

বাষিকি পাবিকা

কলেজ

২০২৩-২৪



আনন্দ মোহন কলেজ

১০২/১, রাজা রামমোহন সরণি, কলকাতা - ৭০০০০৯, পশ্চিমবঙ্গ

অ্যাল্টা গ*

বার্ষিক পত্রিকা

২০২৩ - ২৪



প্রদ্যাবান্ লভতে জ্ঞানম্

আনন্দ মোহন কলেজ

১০২/১, রাজা রামমোহন সরণি

কলকাতা - ৭০০০০৯, পশ্চিমবঙ্গ

অ্যাল্ট্রাপ*

বার্ষিক পত্রিকা

২০২৩-২০২৪

• আঙ্গিক বিন্যাস •

ড. মিলি দাস

• সার্বিক সহযোগিতায় •

জয়দীপ সিন্হা

শ্রী দেবাশিস গাঙ্গুলী

শ্রী নাডুগোপাল রায়

শ্রী দেবাশিস মাইতি

ড. প্রীতিলতা রায়

ড. রীনা কুমারী রাম

অধ্যাপক রাজীব নস্কর

ড. নন্দিনী দানিয়ারী

ড. শেখ আব্দুল রশিদ

ড. সন্দীপন সেন

অধ্যাপক শান্তিনাথ মণ্ডল

ড. প্রিয়তোষ দত্ত

• প্রচ্ছদ •

অধ্যাপিকা দেবলীনা চক্রবর্তী

ড. শুভলক্ষ্মী পাল

• মুদ্রক •

জেপিএস ইনফোমিডিয়া

কলকাতা - ৭০০০৪৬



সিটি কলেজের প্রতিষ্ঠাতা

শ্রী আনন্দ মোহন বসু

জন্ম : ২৩শে সেপ্টেম্বর, ১৮৪৭

মৃত্যু : ২০শে আগস্ট, ১৯০৬

শুভেচ্ছা বাণী



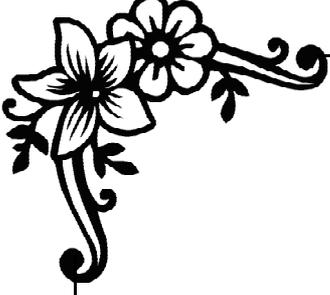
ভারপ্রাপ্ত অধ্যক্ষের কথা

শতফুল বিকশিত হোক, এই মনোবাসনা ছাত্রদের প্রতিধ্বনিত হচ্ছে প্রতিনিয়ত। এই সমাজে নবীনেরা আধমরাদের ঘা মেরে বাঁচাবে এবং স্নেহময় দায়িত্ববান ছাত্র-ছাত্রীদের সৃজনশীল কর্মের মাধ্যমে চারপাশের অন্ধকার কেটে যাবে। আনন্দ মোহন বসু এমনই একজন আলোকিত মানবাত্মা, যিনি বঙ্গ সমাজের অন্ধকার সরিয়ে মানুষের চেতনা চৈতন্য জাগরিত করেছিলেন। তাঁর আদর্শে প্রাণিত বর্তমান নবীন প্রজন্মের সেই জাগ্রত বোধ-এর জয়ধ্বনি ঘোষিত হচ্ছে। আমার স্নেহাস্পদ সেইসব সম্ভাবনবৎ উত্তরসূরির 'আলাপ' নামাঙ্কিত যে বার্ষিক পত্রিকা প্রকাশ করতে চলেছে তার জন্য আমি গর্বিত ও যারপরনাই আনন্দিত। পত্রিকার গুণগতমান, বিষয় বৈচিত্র্য, মুদ্রণ নিশ্চিতভাবে এই মহাবিদ্যালয়ের গৌরব বৃদ্ধি করবে। ২০২৩-২৪ বার্ষিক পত্রিকার সর্বাঙ্গীন সাফল্য কামনা করি।

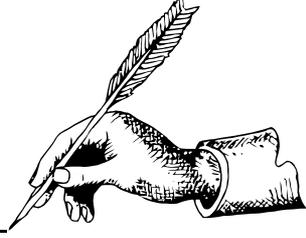
শুভেচ্ছাসহ

ড. প্রিয়শোষ দত্ত
ভারপ্রাপ্ত অধ্যক্ষ





সম্পাদকের কথা



কলেজ পত্রিকা 'আলাপ' আবার প্রকাশিত হল বলে আমরা যারপরনাই আনন্দিত। এবছর বহু ছাত্র, শিক্ষক এবং শিক্ষাকর্মী বন্ধুরা তাঁদের গল্প, কবিতা, প্রবন্ধ ও চিত্রকলা জমা দিয়ে পত্রিকাকে সমৃদ্ধ করেছে। এবার হিন্দিভাষায় বেশ কিছু লেখা আমরা পেয়েছি যা গত কয়েক বছরের তুলনায় ব্যতিক্রমী। মনোমুগ্ধকর কিছু ফোটোগ্রাফও প্রাপ্তির ঝুলিতে রয়েছে।

পত্রিকার সম্পাদক হিসেবে আশা রাখি, সকল ছাত্র, শিক্ষক ও শিক্ষাকর্মীবন্ধুরা তাঁদের সাহিত্য ও শিল্পচর্চার মাধ্যমে কলেজ পত্রিকা 'আলাপ'কে প্রবহমান রাখবেন।

জয়দীপ সিংহ (সিন্ধা)

ছাত্র প্রতিনিধি

কলা বিভাগ





Message From the
President's Desk

Dear Esteemed Faculty, Staff, Students, and Alumni of Ananda Mohan College, It is with great pride and profound gratitude that I address you as the newly appointed President of the Governing Body of this venerable institution. As we stand at the threshold of another year, I reflect on the rich legacy of excellence that Ananda Mohan College has cultivated over several decades. It is a place where knowledge meets wisdom, where tradition merges with innovation, and where each individual's potential is nurtured to its fullest.

Our college strives to be a beacon of academic brilliance, intellectual curiosity, and holistic development. The pages of this annual magazine offer a beautiful canvas to celebrate our collective achievements – whether they are academic, cultural, or personal milestones that each of you has reached. It is heartening to see how Ananda Mohan College continues to inspire and empower its students, faculty, and staff, creating a nurturing environment where ideas flourish and dreams take root.

In my tenure as President, I am committed to furthering the college's mission of fostering an atmosphere of learning that transcends traditional boundaries. With the support of the dedicated faculty, staff, and students, we will continue to focus on enhancing academic infrastructure, promoting research, and nurturing a sense of social responsibility. Together, we will work tirelessly to ensure that Ananda Mohan College remains a place of academic distinction and a catalyst for positive change in our community.

As we celebrate the achievements of the past year, let us also look forward to the challenges and opportunities that lie ahead. I urge each of you – students, faculty, staff and alumni – to continue to uphold the values of integrity, compassion, and perseverance that have always defined the spirit of Ananda Mohan College. Let us strive, as always, to build a future that reflects the very best of who we are, while honoring the legacy of those who have walked this path before us.

I look forward to working alongside each one of you to make Ananda Mohan College an even greater institution in the years to come.

Warm Regards & Best Wishes,
Dr. Dipra Bhattacharya
President, Governing Body
Ananda Mohan College



गभर्नर वडर (ध्राङ्गन) सभरपठर कथर

अनुशरसत बनें वरदधररथी

‘करक चेषुठ, बको धुनरनु, शुररन नरदुरर तथैव च अलुडरहररी, गृहलुडरगरी, वरदधररथी डंऑ लकुषणडु।।’

वरदधरधुडन करने वरले वरदधररथीके के लरए डौररगनक करल से ही डरह सुनरशुऑर कडर गडर थर कड उनकर डीवन डूरुणतडर अनुशरसत हो। वरदधररथीके के लरए कौरवै डैसी नररंतर चेषुठ करने, बगुले डैसर धुनर लगरने, शुररन डैसी हलुकी नीड लेने, कड डुऑन करने तथर डर से दूर आशुरड (वरुतडरन संदरुड डें हॉसुतल) डें रहकर वरदधर डुरहण करने कर स्पषुठ नररदेश थर। ततुकररलीन सडड डें गुरुकुल की डुरथर ऑलन डें थी, डुररर गुरुओं के आशुरड डें रहते हुए वरदधररथी उनसे शरकुषर डुरहण करते थे। उनकर डीवन डूरुणतः अनुशरसत होता थर। वरदधररथी सुडरह डुरहककल डें उठकर सुनर-धुनर करते तथर डुरके डरद गुरु से वरडुनन वरषुडुडें डें शरकुषर हरसल करते थे। वरदधररथीके को शरकुषर दी डरती थी - ‘वरदधर ददरतड वरनडडु, वरनडडु ददरतड डरतुरतडडु...’ कड वे वरनडु डनें, वुडुडुके वरदधर से वुडुऑ वरनडु होता है तथर वरनडु वुडुऑ ही ‘सुडरतुर’ डरनर डरतुर है।

करलरंतर डें शैकुषणनक वुडुवसुथरएं डदली तथर शरकुषर के वरसुतवक उदेशुड डदल गडे। डीवन के डूरुववती उदेशुड ‘धरुड-अरुथ-करड-डुकुष’ डें से अब ‘अरुथ’ सरुवडुरधरन डन गडर है। डुरी करण ‘डरनवीडतर’, ‘सौरहरदतर’, ‘सहडरगलतर’, ‘डरुडककर’ डैसी उदरत डरवनरएं कड हुई है। डरले डु शरकुषर संडूरुण वुडुऑतुव नररडरण डर डुर देती थी, अब ‘अरुथुडररुऑन’ डर केंदुरत नऑर आती है। संसुकररुडें से अधक डुर तकरनीकी कौरशल डर है।

ऐसे डें संडूरुण सडरऑ कड दरडुतुव है कड ‘हडुडन रुरुडुऑ’ डनते डर रहे वरदधररथीके को संसुकरर एवं अनुशरसन कड डुषण दें तरकड वे सडरऑ, देश व डुरी दुनरडर को शुरेषुठ से शुरेषुठतर डनर डरएं। आऑ आवशुडकतर है नडे सरुरे से डुर डरत डर वरऑर करने की कड नडु डीदुडी के हत डें उनुडें ‘अनुशरसन’ कड वरसुतवक डरठ डदरएं और गुरुदेव रवीनुदुरनरथ टैगुर के नरनु शडुडुडु के अनुडड संसर वरकसत करुं -

ऑतु डेथर डुरशुनुड उऑ डेथर शरर, ऑडन डेथर डुऑु, डेथर गुरेडर डुररऑर
आडन डुररुऑनतले दडस-शरुवरी, वसुधरुरे ररथे नरई खडु डुऑ करर,

अरुथरतु -

डन हो नररुडुड डुररर, ऑनरन हो डुऑुत डुररर,
ऑऑर हो शीश डुररर, वसुधर नररु डंती हो डुररर
संकुीरुणतर के ऑुऑे-ऑुऑे तुकडुडु डें।

- वरवेक गुडुत

झूठी पत्र

कविता

आशियाना — देवाशिस गान्गुली	११
तेर जन्य — ड. काकलि सिंह	१२
समय — दिव्यज्योति नियोगी	१२
सेह ट्रेन लाइनेर धार — अम्येन्दु मन्डल	१३
घुमन्तु प्राण — श्रीमध्याम	१३
निश्चित आशये — ड. सुभाष राय चौधुरी	१४
एटाई सत्य — सोहिनी राय	१५

गद्य, प्रबन्ध ओ गल्ल

रवीन्द्रनाथेर मृत्यु — ड. सन्दीपन सेन	१७
चेतन-अवचेतन लीला प्रसङ्ग — ड. प्रशासुत बन्द्योपाध्याय	१९
आशिते आसिओ ना — ड. शुभलक्ष्मी पाल	२२
रायबैशे रणनृत्य ओ बागदि जाति: गौरवमय अतीत ओ विपन्न भविष्य — ड. मिलन राय	२४
“नेह काज तो खई भाज” — डाः प्रदीप मुखोपाध्याय	२९
ट्याक्लि नान्धार 1729 ओ अजाना बाडिर ठिकाना — ड. प्रियतोष दत्त	३१
भितरकणिकार म्यानग्रोभे फिशिंग क्यारुटेर दर्शन — ड. शैणक दत्त	३३

हिन्दी लेख

एक और दिन — निशांत कुमार चौरसिया	३५
संघर्ष की राह पर — राघव मिश्रा	३५
एक नारी के मन की बात — ईशा साव	३७
मुझे आदत नहीं बातों की — ब्यूटी चौधरी	३७
खुबसूरती या ख्याल — ज्योतिका प्रसाद	३९
भारतीय लोक संस्कृति और पश्चिम बंगाल — डॉ. रीना सिंह	३८
पितृसत्ता: अर्थ, उत्पत्ति एवं व्यापकता — पूजा मिश्रा	४१

English Articles

The Symphony of Learning — Dr. Dipra Bhattacharya	୪୮
Closely Betray — Sohini Roy	୪୮
The Legacy of Ananda Mohan College — Supriyo Saha	୫୨
Growing Up — Rashi Chatterjee	୫୦
Shine — Sohini Roy	୫୦
An Essay on Equality — Dr. Dibyajyoti Ghosh	୫୨
Some of the oldest zoos in India — Dr. Pallab Ray	୫୬
Reflections on Why and How the Best Teachers are the 'Best' ? — Dr. Priyatosh Dutta	୫୬
Artificial Intelligence : A Game Changer for College Graduates and Their Employability — Dr. Dipra Bhattacharya	୬୨

আশিয়ানা
দেবশিস্ গাঙ্গুলী
হিসাবরক্ষক, অর্থদপ্তর

আমাকে চেনার পর
যতটুকু বাকী আছে জানা,
সেখানে প্রবেশ নিষেধ
সেটা নিতান্তই ব্যক্তিগত সীমানা।
ধার করা এ টুকু কথা,
নিলামই বা ধার,
আমরা তো আসলে ধারালো হই
ধার করা কথা করে ব্যবহার।
ধার তো হয় বুদ্ধিও, ধার হয় অর্থ
অযথা ধারে আবার যথেষ্ট অনর্থ।
সে ব্যক্তিগত সীমানার তলে,
সেখানে নীলচে আলোয়
হলুদ চাঁপা ফুলে,
ভ্রমর বড়ই সুখী
চাঁপার মধু আগলে।
সেখানে বপন চলে
শুধু আগামীর বীজ,
বাতিল সেখানে ফুটেজ,
মাখন আর চীজ।
সেখানে কেউ বা যদি
পরাগ রেণু ছড়ায়,
বাতাস চঞ্চল হয়

রোমানের ফোয়ারায়।
সেখানে তর্ক চলে না
চলে শুধু আলাপ,
সেখানে নিধন নেই
আছে সৃজনের উত্তাপ।
সেখানেও লোভ আছে
আছে কামনার মিশেল,
তবে সে লোভ আর কামনায়
ব্যস্ত সৃষ্টির হেঁসেল।
বিবাদ সেখানেও আছে
আছে আক্রমণ,
সে আক্রমণে শান দেয়
খুনসুটির দুশমন।
তাই এখানে আমার বাড়ি
নিশ্চুপ আলয়ে,
জানি পৃথিবী নতুনই আছে
হৃদয়ের দেবালয়ে।
ভয় পেও না বন্ধুরা সব
চুপচাপ দেখ,
সানন্দে অপরাধীর
সাজার গল্প লেখ।
তোমার চেয়েও ব্যস্ত কেউ

নীরবে গোপনে,
এ বিশ্বে আবর্জনার
মহা সংক্রমণে।
ক্ষুরধার তরবারি
হয়ত সচল,
শুধু নিজেরে রাখতে গোপন
সে চির অবিচল।
ভাবছি করছি আমি
আমি সবল,
আসলে অনিবার্য পরিণতি
আনে সকল কর্মফল।
দুস্তের দমন শিষ্টের পালন চাও
আপন শরীরের বাইরে,
সে সুদর্শন যেন ঘোরে
তোমারও অন্তরে।
যুক্তির কবলে রাখছ ঢেকে
তোমার যত অশুদ্ধ ফলক,
দুর্বল শরীর আর স্থবির জীবনে
করবে উদ্ঘাটিত তা জেনে রেখ,
তোমার জীবন সড়কের
শেষ মাইল ফলক।

তোর জন্য

ড. বশবন্ত সিংহ

অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ

তাকে নিয়ে কবিতা লিখব বলে —

ঘুম ভেঙে বসেছি আধো রাতে।

কত রাত এখন ?

জানি না কত রাত,

আমি শুধু জানি ফাগুন,

আমি শুধু জানি পূর্ণিমা,

আর জানি কবিতা লিখতে হবে,

তোর জন্য।

কবিতা লিখতে গিয়ে —

তোর কথাই মনে পড়ছে শুধু।

তাকে শাল-সেগুনের গাছের ফাঁকে,

নতুন সূর্যের মতন লাগে।

তোর কথা মনে এলে চারিদিকে —

আলি আহমেদ হুসেনের সানাই বাজতে থাকে।

রজনীগন্ধায় ভরে আছে সব —

লিখি কী করে বলত ?

কি দিয়ে নিরেট করব লেখা ?

অমোঘ শব্দ মনে আসছে না কিছুতেই।

তোন জন্য কবিতা লিখব বলে —

বসে আছি।

শব্দ নেই, ছন্দ নেই,

আছে এলোমেলো লাইনের সমাহার,

হোল না তোকে দেওয়া কবিতায় উপহার,

হারিয়ে যাচ্ছে কথা —

বুঝতে পারছি, তোকে নিয়ে কাব্য করা বৃথা,

আসলে আমার কাছে —

তুই নিজেই এক ছন্দোবদ্ধ কবিতা।

সময়

দ্বিব্যঙ্গ্যোতি নিয়োগী

চতুর্থ সেমিস্টার, প্রাণীবিদ্যা বিভাগ

হেঁটে যেতে হবে বহু দূরে

ঘষা পাথরের গা বেয়ে

খোদিত ছিল যে সব শিলালিপি

সবই আজ অতীতের দিকে চেয়ে।।

চিরকাল যা ছিল স্বমহিমায়

সবই আজ ভগ্নপ্রায়

শূন্য হয়েছে জনপদ

সে আজ আরো প্রাণ চায়।।

অস্তিম বলে যা কিছু আছে

ক্ষণকালে সবই বদলেছে

বদলেছে তুমি বদলেছি আমি

ক্ষণকালে সবই বদলে যায়।।

ক্লান্ত পাখিরা আজ তৃষ্ণার্ত

অস্থিমজ্জা শুষ্ক হয়েছে প্রায়

পচন রোগ ঘিরে রেখেছে তাদের

আর বাঁচার আসা নাই।।

দীর্ঘ হয়েছে শ্বাস

ফুস ফুস আজ যে জীর্ণ

অতিকায় দেহ তাই

আজ কুঁকড়ে হয়েছে শীর্ণ।।

নেই প্রাণের আশা

তীর হয়েছে তপ্ত প্রবাহ

যারা আগে এল তারাও বিদায় নিল

জীবন্ত শরীর হয়েছে জ্বলন্ত বিগ্রহ।।

সেই ট্রেন লাইনের ধার

অ্যেচ্যেঙ্কু ঝঙ্কল

ষষ্ঠ সেমেস্টার, বিজ্ঞান বিভাগ

প্রায়ই কয়েক দশক কেটে গেছে,
সেই রেল-লাইনের ধারে যাওয়া হয়নি,
আজ যখন গেলাম, দেখলাম —
সব কিছুই যেন একইরকম
আছে আগের মতো; যে রকমটা
ফেলে এসেছিলাম ওই
দিন, যে দিন দেখেছিলাম
শেষবার তাকে, তার বাড়িতে।
ফেলে আসা সেই রেলের লাইন
ইলেকট্রিক পোল, ট্রেনের আনাগোনা
সবই এক রকমই রয়ে গেছে।
একই রকম রয়ে গেছে কলোনির
লোকদের তাসের আড্ডা; শেষ
ট্রেনের ছইস্ল্ যেন এটাই আমায়
বোঝাতে চায় — যে তার কাছে
তোমারও সময় শেষ।
এ সবেই মাঝে দেখলাম একটি
অদ্ভুত দৃশ্য; যেখানে একটি ছেলে
তার বাড়ির জানালায় এখনও
দাঁড়িয়ে আছে, তার ভাঙা মন ও
ভালোবাসা হাতে নিয়ে তার অপেক্ষায়।
আশেপাশের সবকিছু যেন ইঙ্গিত
দিতে চায় যে, তার হাতে সময়
নেই, সে হেরে গিয়েছে এই
খেলায়, কিন্তু তার সম্ভাবনা তত্ত্বের
অঙ্কের উত্তর 0.01% সম্ভাবনার

আশা নিয়ে দাঁড়িয়ে আছে যে সব কিছু
আবার আগের মতো
একই রকম হয়ে যাবে। আবার
রেল লাইনের দুই পরিবেশ, মন
এক হয়ে যাবে আগের মতো
যখন সেই মেয়েটি তার
ভাঙা মনটিকে আবার জোড়া
লাগাতে সাহায্য করবে, হাত
বাড়িয়ে দেবে।



ঘুমন্ত প্রাণ

শ্রীমধ্যম

স্নাতক, রসায়ন বিভাগ

দিনের পর দিন লাশের গন্ধ গ্রহণ করেও,
প্রসন্নতার চাদরে নিজেকে মুড়ে, বেড়ায় ঘুরে কত মানুষ!
নানা লোভের বশবর্তী হওয়ায় জিহ্বা থেকেও ঝরে লালা...
অনেকের নেই লজ্জা-মান ও হুঁশ!
মরণের গর্ভে লুকিয়ে থাকে বিবেক-মনুষ্যত্ব-মূল্যবোধ;
অন্যায়প্লাবনে ভেসে মানুষ মেরে মানুষ নেয় প্রতিশোধ!
টাকার স্তরের উপর বসে থাকে অগণিত মানুষ;
সততা নয়-পরিশ্রম নয় জেগে থাকে ক্লেশ ও ঘৃণা!
চারিপাশে দেখা যায় না বেশি প্রকৃত জ্ঞানসম্পন্ন মানুষ;
কেউ হ'য়ে থাকে বেহুঁশ, কেউবা থাকে বসে অন্ধ সেজে!
কুপের ভিতরে ঢুকে কত মানুষ যন্ত্র হ'য়ে অন্যায় মজে!
দিনের পর দিন লাশের গন্ধ গ্রহণ করেও,
প্রসন্নতার চাদরে নিজেকে মুড়ে, বেড়ায় ঘুরে কত মানুষ!

নিশ্চিত আশ্রয়ে

ড. সুভাষ রায় চৌধুরী
অধ্যাপক, বাণিজ্য বিভাগ

দুলছে হাওয়ায় নৌকোটা
আমরা দু'জন যাত্রী
দুলছে দূরের সাঁকোটা
ঘনিয়ে এল রাত্রি;
মাঝিভাই তোলো পাল
ধরো হাল —
বাড়ছে ঝড়ের গতি
ভাঙছে পাড়, ডুবছে গ্রাম
রাঙা মাটির পথটাও,
বুঝিনা ঝড়ের মতি
ভিড়াও তোমার নৌকো
তাড়াতাড়ি, আরো তাড়াতাড়ি
আমার প্রিয়ার তরে,
তোমার কাছে মিনতি
বাঁচাও আমার প্রিয়ারে।
চারিদিকে শুধুই অন্ধকার
ঘন অন্ধকার
শন্ শন্ হাওয়ায়
আরও দুলছে নৌকোটা —
আমার বুকে মুখ লুকিয়ে
নিরাপত্তার আশ্রয়ে
প্রিয়া আমার কাঁদছে,
কেমন করে
নৌকোটা ভাসছে!
বোধ হয়, বিধাতাও হাসছে।
হঠাৎ করে ভীষণ জোরে

অনেক বড় ঢেউটা এসে
ভাসিয়ে নিল আমার প্রিয়াকে,
নিষ্ঠুর বিধাতাকে
অভিশাপ দিয়ে
ভাসিয়ে দিলাম নিজেকে —
প্রিয়ার খোঁজে।
অনেক ঢেউয়ের ঝাপটা এসে
পথটা দিল হারিয়ে —
ডুব সাঁতারে
অনেকটা পথ পেরিয়ে
রাত্রি প্রায় শেষে —
ঐ দেখা যায়
ছোট্ট আলোর রেখা,
দূরের গ্রামের কুঁড়েঘরগুলিতে
জ্বলছে প্রদীপের শিখা।
অনেক আঁধার পেরিয়ে
রাতের অন্ধকার এড়িয়ে —
পূব আকাশে
দিগন্ত রেখায়
সূর্য দিল তার প্রথম আলো ছড়িয়ে,
দেখি পাড়ের কাছে এসে —
আমার প্রিয়া
আসছে ভেসে ভেসে
আমার দিকে
নিশ্চিত আশ্রয়ের খোঁজে।
দেখি

এলোমেলো বসনে
যেন সদ্য
হাসছে মিটিমিটি
চক্ষু দুটি মুদে,
শেষ হাসিতে
বিয়ন্ত্রণায়
দিলাম তারে ছুটি
বিধাতার কোলে
নিশ্চিন্ত আশ্রয়ে;
দূরে ঐ নৌকাটি
এখনও ভাসছে
পাড়ের কাছাকাছি,
সূর্যের প্রথম কিরণে
কত শাস্ত এই পৃথিবী,

সমুদ্রটা এখনও ডাকছে
অবাক আন্তে।
সূর্যের আলোয় চিকমিক করে
সেও হাসছে।
পৃথিবীর জল, স্থল, বাতাস
সূর্য, চন্দ্র, আকাশ
সবই আছে —
আছি আমিও
আছে সমস্ত মানুষ,
শেষ হয়েছে
আমার গর্বের কানুন —
যা আমি,
একটু একটু করে
গড়েছিলাম
আমার প্রিয়র তরে।

এটাই সত্য

শোহিনী রায়

তৃতীয় সেমেস্টার, ইংরেজী মেজর

জীবনে কোনো কিছুর অহংকার করলাম না
তাই জন্য নিজের প্রতি অহংকার।
কিন্তু এই অহংকারকে ভেঙ্গে
কি লাভ যে পাবে!
আমি খুবই সহজ কথা বলি
কিন্তু মানুষ কেনো সেইটাই জটিল করে?
একটু মানুষকে প্রেম করে বসি —
কিন্তু মানুষই ওরা এটাই বুঝলাম

তারা বোঝেনা।
খুবই নির্মম বাস্তবতা
হাসি, রাগ এর কোন জায়গা নেই।
চলতে হলে তাদের মতন চলো
নাহলে তারা তোমার জীবনকে নিয়ে প্রশ্ন করবে
'তুমি' কে ভুলে যেও।
'তারা' কে মনে রেখো
এইটাই সত্য এই কলিযুগে।

রবীন্দ্রনাথের মৃত্যু

ড. সন্দীপন সেন

অধ্যাপক, ইংরেজী বিভাগ

রবীন্দ্রনাথ ঠাকুরের মৃত্যু হয়েছিল মূত্রাশয়ের পীড়ায়, এবং শেষ পর্যন্ত তাঁর কিডনিও প্রায় বিকল হয়ে গেছিল। তাঁর অসুস্থতার প্রথম সূত্রপাত হয়েছিল ১৯৪০ সালের ২৫ সেপ্টেম্বর। তখন তিনি ছিলেন কালিম্পাং শহরে। সে সময়ে মূত্রাশয়ের পীড়ায় তিনি জ্ঞান হারিয়ে ফেলেছিলেন, তখনই দার্জিলিংয়ের ইংরেজ সিভিল সার্জন রবীন্দ্রনাথের অপারেশন করতে চেয়েছিলেন, কিন্তু রবীন্দ্রনাথের পুত্রবধূ প্রতিমা দেবী সে প্রস্তাবে সম্মত হন নি। তারপর রবীন্দ্রনাথের বিশেষ স্নেহভাজন প্রশাস্তচন্দ্র মহলানবিশের উদ্যোগে রবীন্দ্রনাথকে কলকাতায় ফিরিয়ে আনা হয়। সে আমলের দুই বিখ্যাত চিকিৎসক নীলরতন সরকার ও বিধানচন্দ্র রায়ের চিকিৎসায় রবীন্দ্রনাথ সাময়িকভাবে সুস্থ হয়ে উঠেছিলেন বটে, কিন্তু কখনওই একেবারে রোগমুক্ত হতে পারেন নি।

সে বছরের ভাইফোঁটার পর, ১৯৪০ সালের ১৮ নভেম্বর রবীন্দ্রনাথ কলকাতা থেকে শান্তিনিকেতনে চলে আসেন। তখনও তাঁর শরীরে জ্বর নিত্যসঙ্গী। পরের বছর এপ্রিল মাসে বাঙলা নববর্ষের দিন অসুস্থ শরীরেই তিনি তাঁর জীবনের শেষ ভাষণ দেন, যে ভাষণ ‘সভ্যতার সংকট’ নামে বিখ্যাত হয়ে আছে। অবশেষে নিজের আসন্ন মৃত্যুর কথা তিনি নিজেই লিখলেন তাঁর গল্পসল্প বইতে। সেখানে ছড়ার ছন্দে তিনি লিখলেন :

খাতা হাতে এখন বুঝি
আসছে কানে কলম গুঁজি
কর্ম যাহার চরম হিসাব লিখা।

রবীন্দ্রনাথ সাধারণভাবে অ্যালোপ্যাথি চিকিৎসার ভক্ত ছিলেন না, যদিও নোবেল পুরস্কার পাবার কিছুদিন আগে, ১৯১৩ সালের ৩০ জুন, ইংলন্ডের ডাচেস নার্সিং হোমে অ্যালোপ্যাথি মতে তাঁর অর্শ অপারেশন হয়েছিল। তবে মূত্রাশয়ের পীড়ার জন্যে তিনি কোনও অপারেশন করাতে চেয়েছিলেন কি না সে বিষয়ে নিশ্চিত করে কিছু বলা যায় না। বরং, বিভিন্ন ব্যক্তির সাক্ষ্যপ্রমাণ থেকে যা বোঝা যায়, তিনি অ্যালোপ্যাথি মতে চিকিৎসা বা অপারেশনের পক্ষপাতী ছিলেন না। স্বাভাবিকভাবেই তিনি মৃত্যুকে বরণ করে নিতে চেয়েছিলেন। রবীন্দ্রনাথের অপারেশনের বিরোধী ছিলেন ডাক্তার নীলরতন সরকার। তিনি বলেছিলেন রবীন্দ্রনাথের দেহ এতই সুকোমল যে তিনি অপারেশনের ধকল নিতে পারবেন না। কিন্তু ডাক্তার বিধানচন্দ্র রায় অপারেশনের পক্ষে ছিলেন, এবং শেষ পর্যন্ত তাঁর মতামতেরই জয় হলো। অপারেশনের জন্যে রবীন্দ্রনাথকে শান্তিনিকেতন থেকে কলকাতা নিয়ে আসা হয় ১৯৪১ সালের ২৫ জুলাই, বাঙলা ১৩৪৮ বঙ্গাব্দের ৯ শ্রাবণ। শান্তিনিকেতন থেকে মোটরগাড়ি করে রবীন্দ্রনাথকে নিয়ে যাওয়া হয়েছিল বোলপুর রেল স্টেশনে, সেখান থেকে রেলওয়ের একটি বিশেষ সেলুন করে তাঁকে তোলা হয়, সেই সেলুন কার হাওড়া স্টেশনে পৌঁছানোর পর নিউ থিরেটার্স এর বাসে চাপিয়ে তাঁকে নিয়ে আসা হয় তাঁর পৈতৃক নিবাস জোড়াসাঁকো ঠাকুরবাড়িতে, যে বাড়িতে আশি বছর আগে তিনি জন্মেছিলেন।

রবীন্দ্রনাথ জোড়াসাঁকো ঠাকুরবাড়িতে পৌঁছানোর পর তাঁর চিকিৎসা ও অপারেশনের জন্যে একটি মেডিক্যাল টিম তৈরি করা হয়। সেই দলে ছিলেন মোট পাঁচজন ডাক্তার — তাঁরা হলেন ডাক্তার ললিত বন্দ্যোপাধ্যায়, ডাক্তার বিধানচন্দ্র রায়, ডাক্তার অমিয় সেন, ডাক্তার সত্যসখা মৈত্র এবং ডাক্তার জ্যোতিপ্রকাশ সরকার। উল্লেখযোগ্যভাবে সেই দলে অনুপস্থিত ছিলেন রবীন্দ্রনাথের বন্ধু স্যার নীলরতন সরকার—যিনি রবীন্দ্রনাথের অপারেশনের বিরোধী ছিলেন।

১৯৪১ সালের ৩০ জুলাই, রবীন্দ্রনাথের অপারেশন হয়। অপারেশনের আগে, সকাল সাড়ে নটার সময়ে তিনি তাঁর জীবনের শেষ কবিতাটি লেখেন। এ কবিতাটি তিনি মুখে মুখে বলেছিলেন, আর লিখে নিয়েছিলেন শ্রীমতী রানী চন্দ। রানী চন্দকে মুখে মুখে এ কবিতাটি বলার পর রবীন্দ্রনাথ আরও বলেছিলেন যে এখানে কিছু জায়গায় গোলমাল আছে, অপারেশনের পর সেসব জায়গা তিনি ঠিক করে দেবেন, কিন্তু সে সুযোগ তিনি আর পান নি— কারণ অপারেশনের পর তিনি আর কবিতা লেখা বা বলার মতো শারীরিক শক্তি ফিরে পান নি।

জোড়াসাঁকো ঠাকুরবাড়ির বারান্দায় টেবিল পেতে অপারেশনের আয়োজন করা হয়। মূল অপারেশন করেছিলেন—অর্থাৎ ছুরি ধরেছিলেন—ডাক্তার ললিত বন্দ্যোপাধ্যায়, তাঁকে সাহায্য করেছিলেন ডাক্তার সত্যসখা মৈত্র আর ডাক্তার অমিয় সেন, এ ছাড়া মাথার দিকে দাঁড়িয়েছিলেন ডাক্তার জ্যোতিপ্রকাশ সরকার। রবীন্দ্রনাথকে সম্পূর্ণ অজ্ঞান করা হয় নি, শুধুমাত্র লোক্যাল অ্যানাস্থেসিয়া দিয়ে অপারেশনের জায়গাটা অসাড় করে দেওয়া হয়েছিল, আর তাঁর

মুখের সামনে বুকের ওপর একটা ছোটো পরদা দিয়ে দেওয়া হয়েছিল যাতে তিনি ওপারে কী হচ্ছে তা দেখতে না পান। অপারেশন হয়েছিল মোট পঁচিশ মিনিটের—সকাল এগারোটা কুড়ি থেকে এগারোটা পঁয়তাল্লিশ পর্যন্ত। তবে, অপারেশনের জায়গাটা অসাড় করে দিলেও অপারেশনের সময়ে রবীন্দ্রনাথের প্রচণ্ড ব্যথা লেগেছিল, সে কথা তিনি নিজেই বলেছিলেন নির্মলকুমারী মহলানবিশকে। এও বলেছিলেন যে তাঁর এত কষ্ট হয়েছিল যে জোর করে তিনি হেঁট টিপে চোখ বুজে ছিলেন, যাতে তাঁর মুখ দিয়ে কোনও আর্তনাদ বেরিয়ে না যায়। এ ছাড়া সেদিন বিকেলেও তিনি বারবার বলেছিলেন যে তাঁর জ্বালা ও ব্যথা করেছিল।

এখানে বলে নেওয়া প্রয়োজন রবীন্দ্রনাথের ঠিক কী অপারেশন হয়েছিল। তাঁর মূত্রাশয়ের ব্যাধি ছিল, এনলার্জড প্রস্টেট ছিল, কিন্তু প্রস্টেটের অপারেশন তাঁর হয় নি। তাঁর যে অপারেশন হয়েছিল ডাক্তারি পরিভাষায় তার নাম সুপ্রাপিউবিক সিস্টোস্টমি—যার উদ্দেশ্য ছিল প্রস্টেট অপারেশন না করে ছিদ্র করে নল বসিয়ে প্রস্রাব বেরোনের রাস্তা করে দেওয়া, এ অপারেশন সফল হলে পরবর্তীকালে প্রস্টেটের অপারেশন করার পরিকল্পনা ছিল। দুঃখের বিষয়, এ অপারেশন সফল হয় নি, তাই তার পরের অপারেশনটাও করা যায় নি।

এই অসফল অপারেশনের পরে রবীন্দ্রনাথ বেঁচেছিলেন মাত্র আর আট দিন। ১৯৪১ সালের ৭ অগাস্ট, বাঙলা ১৩৪৮ বঙ্গাব্দের ২২ শ্রাবণ, দুপুর বারোটা বেজে দশ মিনিটে তাঁর জন্মস্থান জোড়াসাঁকো ঠাকুরবাড়িতেই তাঁর শেষ নিঃশ্বাস পড়ে। মধ্যের দিনগুলোতে অধিকাংশ সময়ে তিনি অচেতন্য ও

অর্ধচৈন্য অবস্থায় ছিলেন, শারীরিক যন্ত্রণাও ছিল, কিডনিও কাজ করছিল না।

রবীন্দ্রনাথ চেয়েছিলেন তাঁর অস্ত্যেপ্তিক্রিয়া যেন শান্তিনিকেতনেই হয়। কিন্তু তাঁর মৃত্যুর পর তাঁর অস্ত্যেপ্তিক্রিয়া শেষ পর্যন্ত কলকাতা শহরের নিমতলা মহাশ্মশানেই সম্পন্ন হয়। দুপুর সাড়ে তিনটেয় তাঁর মরদেহ নিয়ে শোকযাত্রা শুরু হয়—রবীন্দ্র সরণী, বিবেকানন্দ রোড, চিত্তরঞ্জন অ্যাভিনিউ, কলুটোলা স্ট্রিট, কলেজ স্ট্রিট, বিধান সরণী, অরবিন্দ সরণী,

বি.কে. পাল অ্যাভিনিউ হয়ে তাঁর মরদেহ পৌঁছয় নিমতলায়। নিমতলা ঘাটে অবশ্য তাঁর একমাত্র জীবিত পুত্র রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর রবীন্দ্রনাথের মুখাঙ্গি করতে পারেন নি, কারণ ভিড়ের চাপে তিনি শ্মশানঘাট পর্যন্ত পৌঁছতেই পারেন নি—শেষ পর্যন্ত মুখাঙ্গি করেন রবীন্দ্রনাথের মেজদা সত্যেন্দ্রনাথের পৌত্র সুবীরেন্দ্রনাথ ঠাকুর। এভাবেই শেষ হয় বাঙলা তথা সমগ্র ভারতীয় উপমহাদেশের সর্বশ্রেষ্ঠ কবি রবীন্দ্রনাথের নশ্বর জীবন।

চেতন-অবচেতন লীলা প্রসঙ্গ

ড. প্রশান্ত বন্দ্যোপাধ্যায়
অধ্যাপক, বাংলা বিভাগ

আধুনিক কথা-সাহিত্যে যেমন এক বিশেষ মাত্রাযোগ বাস্তবতা, তেমনই সামাজিক দৃষ্টিভঙ্গির আর এক ফলশ্রুতি হল, মানব-অন্তর্লোকের চেতনা প্রবাহের উপস্থাপন। ১৮৯০ খ্রিঃ প্রকাশিত মনোবিজ্ঞানী উইলিয়াম জেমস লিখিত Principles of psychology গ্রন্থে চেতনা প্রবাহের বিষয়টি প্রথম উচ্চারিত হয়। জেমস এর মতে, মানব-বাহ্যমনের অন্তরালে একটি অবিচ্ছিন্ন চেতনা ও চিন্তাস্রোতের প্রবাহ চলে, যাকে তিনি Stream of thought, stream of Consciousness, Subjective life ইত্যাদি নামে চিহ্নিত করেছিলেন। আর এর থেকেই কথা-সাহিত্যে Stream of Consciousness কথাটি গ্রহণ করেন সিনক্লেয়ার। ১৯১৫ খ্রিস্টাব্দে ডরোথি রিচার্ডসনের লেখা Pointed Roofs নামক রচনার সমালোচনা সূত্রে ১৯১৮ খ্রিস্টাব্দে সিনক্লেয়ার প্রথম এই Stream of Consciousness কথাটি ব্যবহার করেছিলেন। যদিও এর আগেই ঔপন্যাসিকদের মধ্যে এই তত্ত্বের প্রভাব পড়েছিল। ফরাসী ঔপন্যাসিক মার্সেল প্রুস্ত এর Remembrance of the Thing Past এর ১ম খন্ড The Swann's Way তে, ইংরাজি সাহিত্যে ভার্জিনিয়া উলফের রচনায় সর্বপ্রথম চেতন্যপ্রবাহ (Stream of Consciousness) ও অন্তর্মুখিনতা (Subjectivism)-র প্রকাশ লক্ষ্য করা যায়। চেতনা প্রবাহমূলক উপন্যাসের প্রাথমিক রূপাবয়ব হল, মনস্তাত্ত্বিক উপন্যাস।

অবদমিত মনের কামনা-বাসনা, স্মৃতির অনুষঙ্গে অতীত অথবা ভবিষ্যতে যাতায়াত, কখনো বর্তমান কালের সঙ্গে কাহিনীর সাযুজ্য-সাধন, টুকরো চিন্তা-ভাবনা আধুনিক উপন্যাসের যা অন্যতম রীতি, তাকেই বলে চেতনাপ্রবাহ রীতি। এক্ষেত্রে লেখক নিভৃত মনের অবচেতনস্তরে মানস সংকটকে ফুটিয়ে তোলার চেষ্টা করেন। মন প্রায়শই অতীত ও বর্তমানের মধ্যে ঘোরাফেরা করে, কখনো একাকার হয়ে যায়; স্মৃতিচারণ, ভবিষ্যৎ কল্পনা ও এই দু'য়ের মধ্যে বর্তমানের উপস্থিতি টানাপোড়েন ইত্যাদির মাধ্যমে মনের মধ্যে তরঙ্গ-প্রবাহের জন্ম হয় এবং অন্তর্মুখী স্রোত ও তার সঙ্গে চিন্তাস্রোত এসে মিলে এই প্রবাহকে প্রবল করে তোলে। মানব-মনের ৩টি স্তর হল —

১. সংজ্ঞান,
২. অসংজ্ঞান এবং
৩. নির্জ্ঞান।

এগুলির উপর গুরুত্ব দিয়ে ফ্রয়েড ও যুং Psycho Theraphy অর্থাৎ মনোসমীক্ষার যে তত্ত্ব নির্মাণ করেন, তারই পটভূমিতে চেতনামূলক রীতির সূত্রপাত।

চেতনাপ্রবাহ-রীতির প্রয়োগ করে লেখক চরিত্রের মন ও তার অবচেতন অংশ এবং মনন ও অন্তর্মননের স্তরগুলিকে ধরার প্রয়াস করেন, যার সূত্রে পূর্ণায়ত মনকে উন্মোচিত করাই তাঁর লক্ষ্য। এই জাতীয় রচনায় আঙ্গিক গঠনে গল্পত্ব বর্জিত হয় — চলিত ছকের নিটোল প্লট ও আদি-মধ্য-অন্ত্যযুক্ত কাহিনি গঠনের

কৌশল দূরে সরিয়ে দেওয়া হয়, চরিত্র-চিত্রণের বিষয় হয়ে যায় গৌণ; স্মৃতিচিত্রণ ও আত্মকথার রীতির আশ্রয়ে চরিত্রের অন্তর্মানসকে উদ্ঘাটিত করতে প্রচেষ্টা হলেন এই রীতির অনুসারী লেখকেরা। চেতনাপ্রবাহ রীতির লক্ষণগুলি হল, স্মৃতির অনুযঙ্গ, খন্ড খন্ড চিন্তা-ভাবনা, অতীত-ভবিষ্যতের কাহিনি বর্ণনার মাঝে বর্তমান ঘটনার সঙ্গে সংযোগ-স্থাপন, স্বগতোক্তি, তির্যক বাক্বিন্যাস ইত্যাদির ব্যবহার দীপেন্দ্রনাথ বন্দ্যোপাধ্যায়ের ‘অশ্বমেধের ঘোড়া’ গল্পে দেখা যায়।

১. আঙ্গিক —

গোপন বিবাহ-বার্ষিকীর দিন আধুনিক কলকাতার জনবহুল ব্যস্ত পারিপার্শ্বিকতার মধ্যে দুই যুবক-যুবতী কাঞ্চন ও রেখা পরস্পরের কাছে একটু নিবিড় হতে চেয়েছিল, তাই একান্তের খোঁজে তাদের যাত্রা শুরু প্রথমে পায়ে হেঁটে। তারপর ঘোড়ার গাড়িতে এবং শেষ পর্যন্ত আবার পায়ে চলা আশ্রয়হীন অসহায়তায়। জেমস জয়েসের ইউলিসিস এ দেখা গিয়েছিল নায়ক ডেডানােমের ডাবলিন শহর পরিক্রমা। গোপাল হালদারের ‘একদা’য় নায়ক অমিতের চিত্রকল্প ‘যাত্রা’।

২. চেতনার প্রবহধর্ম —

‘রাস্তাটা চোখের সামনে পালটাতে দেখি। কলকাতা রোজ পালটায়। আমরা শুধু রাস্তাটুকুর খবর রাখি।’^১

৩. ভাবনার স্রোতে কাঞ্চনের চিন্তায় রেখা-র প্রথম ‘বৌ’ হয়ে ওঠার ছবি ভেসে ওঠে —

‘সেই মুহূর্তে বৌ বৌ মনে হচ্ছিল’।^২ অথচ রেখা রুমাল দিয়ে ঘষে ঘষে সিঁদুর তুলে ফেলার পর কাঞ্চনের মনে বিধবার মত করুণ ও শূন্য বলে মনে হল সেই রেখাকে।—চিন্তার স্রোত এক ধাত থেকে আর এক ধাতে প্রবাহিত হয়।

৪. মায়ের চিন্তাসূত্রে রেখার ভাবনায় এসে ধরা দেয় বাড়ির কথা —

‘রেখার হাসিমুখ মুহূর্তে শুকিয়ে গেল। মা-র নামে ওর বাড়ির কথা মনে পড়েছে।’^৩ মায়ের থেকে বাড়ি, তার থেকে কাঞ্চনের চেতনাতেও রেখার বাড়ির ভাবনা এসে ধরা দেয় — ‘....ওর (রেখার) বাড়ির কথা মনে পড়েছে। আমারও পড়ে।’^৪

৫. কাহিনিটি প্রধানত কাঞ্চনের —

তার স্বপ্ন ও স্বপ্নভঙ্গের, প্রত্যাশা ও প্রত্যাশাভঙ্গের, কাহিনি; কিন্তু রেখার মৌন সমর্থন ছাড়া সে কখনও পরিপূর্ণ হয়ে উঠতে পারতো না। বিবাহ-বার্ষিকীর বিশেষ দিনটিতে বিশ্ববিদ্যালয়ের সেনেট হলের দরজাবিহীন, খিলান-বিহীন, সিঁড়িবিহীন ভগ্নদশা দেখে তাদের মনে ঐতিহ্যের পতনের বেদনার সঙ্গে প্রথম প্রেমের দিনগুলির কথা স্মৃতির অনুযঙ্গ দোলা দেয়।

৬. আত্মানুসন্ধান —

‘নিজেকে ফাঁকি দিচ্ছি কথায়, রেখাকে ফাঁকি দিচ্ছি কথায়। আর পুঁথি থেকে তার সমর্থন খুঁজছি।’^৫

৭. অনুচ্চারিত স্বগতোক্তি —

‘রেখার পরিবার আছে, সমাজ আছে, আমি একটা পুরুষ। ওহো, আমি পুরুষ। বেড়ে।’^৬

৮. কাব্যিক ভাষা —

‘একদিন, কোনো এক নিকট অথচ বিস্মৃত অতীতে, একদিন অতীতে। সবই ছিল স্বপ্ন।’^৭

৯. গীতিময় ভাষা —

‘কড়ি মধ্যম সমুদ্র স্তম্ভের মতো কেবল ধৈবতে ভেঙে পড়ে, কোমল গাঙ্কার ছুঁয়ে ষড়জে ফিরে এল। আর বৃষ্টি দ্রুত হল।’^৮

১০. সাহিত্য থেকে গৃহীত উদ্ধৃতি —

‘সঙ্গ, কেনা বাঁশী বা এ কালীনী নঙ্গ কূলে।’^৯

১১. প্রতীক —

‘সাবধানে পথ চলুন সপ্তাহ’^{১০}-র ঘোষণায় ‘আলোর দিকে মুখ রাখুন’^{১১} জীবনের ইতিবাচক দিকের প্রতি ইঙ্গিত।

কিংবা, ‘অথচ সামনে সমুদ্র ছিল’^{১২} বাক্যাশ্রয়ে প্রেম, স্বপ্ন, আশা-আকাঙ্ক্ষাকে সমুদ্রের প্রতীকে তুলে ধরা হয়েছে।

১২. ক্যামেরা আই —

ক. Flash Back —

‘... চোখের সামনে স্পষ্ট ভেসে উঠল সুকুমার, প্রফুল্ল আর চন্দন।’^{১৩}

খ. Close up, Fade out —

‘... বৃষ্টি নামল। রেখা বাইরে হাত পেতে ধরল। ফোঁটা ফোঁটা জলে হাতটা অপরূপ হয়ে উঠল। রেখার আঙুলগুলিতে একটি মূদার ভঙ্গি।’^{১৪}

একটি করে ‘ফ্রেম’ তৈরি হচ্ছে, দৃশ্য আসছে, Fade out হয়ে চলে যাচ্ছে, আসছে আবার পরবর্তী ফ্রেম — দৃশ্য।

গ. Panoramic view —

‘... চায়ের দোকান আর রাস্তা আর গঙ্গার ধারের গাছতলা।’^{১৫}

ঘ. Montaz —

‘রেজিস্ট্রারের চেম্বারটা মনে পড়ল — ছোট ঠাসা। রেস্তোরাঁর কেবিনটা মনে পড়ল — ছোট, ঠাসা। বাসের সিঁড়িটা মনে পড়ল — ছোট, ঠাসা।’^{১৬}

লেখক কাঞ্চন ও রেখার নস্টালজিক অনুভূতি ও মানসিক যন্ত্রণার মুহূর্তগুলিকে কয়েকটি বিশেষ চিত্র, টুকরো টুকরো ছবিকে ভাষার বর্ণনা কৌশলে মোহময়

করেছেন, পুঙ্খানুপুঙ্খ বিচার-বিশ্লেষণের পথে যাননি। অতীতের স্মৃতি রোমন্থন, কাঞ্চনের স্বগতোক্তি, রেখার শ্লেষোক্তিতে সার্থক করে তুলেছেন। কাহিনির রঞ্জে রঞ্জে চেতন-অবচেতনের লীলা লক্ষ্য করা যায়। পুরোপুরি চেতনাপ্রবাহমূলক গল্প বলা যায় কিনা, সেই প্রশ্নকে দূরে সরিয়ে রেখেই চেতন-অবচেতনের লীলা প্রয়োগে এক্ষেত্রে লেখকের সার্থকতাকে মানতেই হয়।

উল্লেখপঞ্জী —

১. অশ্বমেধের ঘোড়া, এ কালের ছোটগল্প সঞ্চয়ন (২য় খন্ড), কলিকাতা বিশ্ববিদ্যালয়, ১ম সং (জানুয়ারী ২০০৯), পৃ. ১৬৯
২. তদেব, পৃ. ১৭০
৩. তদেব, পৃ. ১৭২
৪. তদেব, পৃ. ১৭২
৫. তদেব, পৃ. ১৭৩
৬. তদেব, পৃ. ১৭৫
৭. তদেব, পৃ. ১৭৩
৮. তদেব, পৃ. ১৭৬
৯. তদেব, পৃ. ১৭৬
১০. তদেব, পৃ. ১৭৫
১১. তদেব, পৃ. ১৭৫
১২. তদেব, পৃ. ১৭৩
১৩. তদেব, পৃ. ১৭০
১৪. তদেব, পৃ. ১৭৬
১৫. তদেব, পৃ. ১৭৩
১৬. তদেব, পৃ. ১৭১।

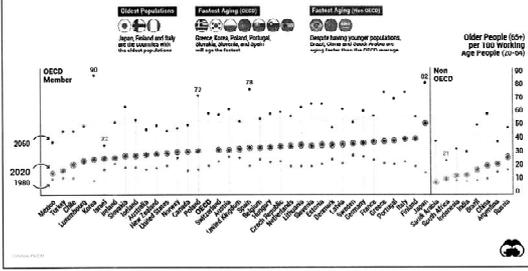
আশিতে আসিও না

ড. শুভলক্ষ্মী পাল

অধ্যাপক, অর্থনীতি বিভাগ

কেমন হবে যদি কখনো এরকম শোনা যায় যে আমাদের দেশের মধ্যে দশ জনের মধ্যে আট জন লোকই বয়স্ক বা বাচ্চা। আমাদের সাধারণ বুদ্ধিতে কি বলে? এরকমটা হলে আমাদের ক্ষতি কি বা লাভটাই বা কি? আরেকটু পরিষ্কার করে বইয়ের ভাষায় বলা যায় এটি হলো নির্ভরতা অনুপাত, যা অকর্মজীবী বয়সের মানুষের সংখ্যার সাথে কর্মজীবী মানুষের তুলনা করে। অর্থাৎ যদি ১৫ থেকে ৬৫ বছরের জনসংখ্যা তুলনায় বাচ্চা (০-১৪) এবং বয়স্কের (৬৫ এর বেশি বয়স) সংখ্যা বেড়ে যায় সেটিকে আমরা ‘নির্ভরশীলতার অনুপাত’ হিসাবে পরিমাপ করে থাকি। তাহলে এখন প্রশ্ন হল, এই অনুপাতটি আমাদের কি বুঝতে সাহায্য করে? সহজভাবে ভাবতে গেলে আমি যদি একটা কারো বাড়ি গিয়ে ভাবি যেখানে বয়স্ক বেশি এবং একজনের উপরই সংসারের সমস্ত কিছু ভার নির্ভর করছে তাহলে প্রথমেই মনে হয় যে এই মানুষটার উপর কতটা চাপ! একটা মানুষ যাকে এতগুলো বয়স্ক লোকেদের দায়িত্ব নিতে হয়, তাকে আয় করতে হয়, তার টাকায় সমস্ত পরিবার চলে; শুধু তাই নয় কোনোরকম শারীরিক অসুস্থতা হলেও সেই লোকটাকে দৌড়াতে হয়। যেমন একটা এটা ঘরের জন্য সত্যি, সে রকম এটা অর্থনীতিতেও এই ধরনেরই পরিবেশ তৈরি হতে পারে। এটি সাধারণত কোনো দেশের আপেক্ষিক চাপ বোঝার জন্য ব্যবহার করা হয়। অর্থাৎ যদি নির্ভরতার অনুপাতটা বেড়ে যায় তাহলে কর্মক্ষম লোকের পরিমাণ কমে যাবে এবং সমগ্র অর্থনীতির উপর একটা চাপ তৈরি হবে। শুনতে অবাক লাগলেও এই ধরনের সমস্যা নিয়ে আজকে যেসব বড় বড় দেশের মাথা ব্যথা তার মধ্যে প্রথমেই যাদের নাম করতে হয় সেগুলি হল জাপান,

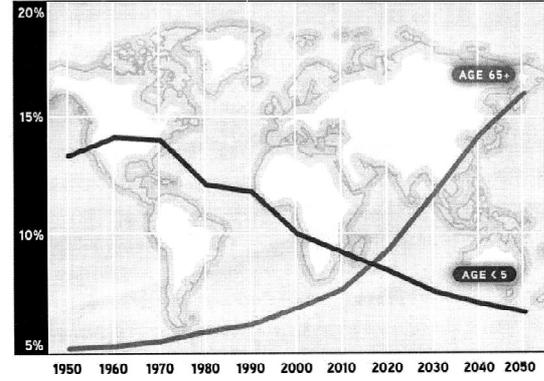
দক্ষিণ কোরিয়া, স্পেন, পোল্যান্ড প্রমুখ উন্নয়নশীল দেশ। শুনতে অবাক লাগলেও এটা সত্যি যে, বিগত কয়েক শতাব্দী ধরে স্বাস্থ্য এবং চিকিৎসা, প্রযুক্তিতে উন্নতি এবং শিশু মৃত্যুর হার ক্রমশ হ্রাস পাওয়ায় আজ অর্থনীতি এই জায়গাটিতে এসে পৌঁছেছে। হ্যাঁ এখানে যেটা ভাবা হচ্ছে ঠিক তাই, মানে কোনো একটি দেশ যদি বেশি উন্নত হয়ে যায় তাহলে তাকে নতুন একটা সমস্যার সম্মুখীন হতে হচ্ছে যেটি হল এই নির্ভরশীলতার সমস্যা। এই নির্ভরতার মধ্যে যদি বয়স্কদের মাথা বেশি থাকে তাহলে সেটি বিপদমূলকভাবে ‘গ্লোবাল এজিং’ এর সমস্যা বলে চিহ্নিত করা হচ্ছে। অর্থনীতির পরিকাঠামোগত উন্নতি পরিমাপ করার জন্য Human Development Index ব্যবহার করা হয় এবং যার একটি পরিমাপ হল: ‘Life expectancy at birth’, বা গড় আয়ু। অর্থাৎ এরকম মনে করা হয় যদি কোনো দেশে চিকিৎসা পরিষেবা বা পরিকাঠামোগত উন্নতি হয় তাহলে দেশের মানুষের গড় আয়ু বৃদ্ধি পাবে এবং যার ফলে HDI ও বৃদ্ধি পাবে। এই HDI বৃদ্ধি আর কিছুই নয় দেশের সামগ্রিক উন্নতিকেই নির্দেশ করে থাকে। তাহলে এখানে প্রশ্ন হল যে গড় আয়ু বৃদ্ধি পেলে দেশের সামগ্রিক উন্নতি হয়েছে বলে ধরা হয় তাহলে সেই গড় আয়ু বৃদ্ধি পেলে আবার সমস্যা তৈরি হচ্ছে কি করে? ওয়ার্ল্ড হেলথ অর্গানাইজেশন (WHO) মূলত প্রজনন হারের ক্রমাগত হ্রাস এবং আয়ু বৃদ্ধিকেই বিশ্বের জনসংখ্যা বার্ষিকের মূল কারণ হিসেবে তুলে ধরেছে। এটি ছাড়াও আরো যে কারণ কে নির্দেশ করেছে সেটি হল, উন্নতির কারণে মৃত্যুর হার কমে যাওয়া।



Source: <https://www.visualcapitalist.com/aging-global-population-problem/>

অর্থনীতির 'life cycle hypothesis' এ জনসংখ্যার বয়সের একটি ধারণাকে তুলে ধরা হয়েছে, যেখানে সঞ্চয়ের সাথে একটি সম্পর্কে তুলে ধরা হয়েছে যা প্রত্যক্ষভাবে অর্থনৈতিক বৃদ্ধিকে প্রভাবিত করতে সক্ষম। অভিজ্ঞতামূলক বিশ্লেষণে, ফেয়ার অ্যান্ড ডোমিনগুয়েজ (1991) আবিষ্কার করেছেন যে মার্কিন জনসংখ্যার বয়স কাঠামোর পরিবর্তনগুলি সমষ্টিগত অর্থনৈতিক সূচকগুলির পরিবর্তনের সাথে ঘনিষ্ঠভাবে সম্পর্কিত। যেমন ভোগ, আবাসন বিনিয়োগ, অর্থের চাহিদা এবং শ্রমের অংশগ্রহণ। Aksoy et al (2019) যিনি 21 টি OECD দেশের জন্য প্যানেল ডেটা বিশ্লেষণ করেছেন তাও দেখেছেন যে জনসংখ্যার বার্ষিক অর্থনৈতিক বৃদ্ধি, বিনিয়োগ, সঞ্চয়, মাথাপিছু কাজের ঘন্টা, প্রকৃত সুদের হার এবং মুদ্রাস্ফীতির উপর অর্থনৈতিক এবং পরিসংখ্যানগতভাবে উল্লেখযোগ্য প্রভাব ফেলে। এখন প্রশ্ন হল বয়স খাটানোর এই পরিবর্তনগুলি কীভাবে মূল্য বৃদ্ধি, সম্পদ গঠন এবং বিনিয়োগকে প্রভাবিত করে? Juselius and Takats (2021), প্রাথমিকভাবে শ্রমজীবীর সংখ্যার সাথে সঞ্চয়ের একটা সম্পর্ক তুলে ধরেছেন। উনাদের মতে, তরুণ গোল্ডার মধ্যে সঞ্চয়ের একটি প্রবণতা দেখা যায় অন্যদিকে বয়স্করা সেই সঞ্চয়কে ভাঙে এবং তাদের জীবন অতিবাহিত করে। অর্থাৎ সঞ্চয় কমার সাথে সাথে যদি ব্যয় বৃদ্ধি পায় তাহলে অনিচ্ছাকৃতভাবে হলেও মুদ্রাস্ফীতি হার বাড়তে থাকে।

অন্যদিকে বয়স্কের সংখ্যা বাড়লেও প্রশাসনের দিক থেকে একটা চাপ তৈরি হয় কারণ তাদের আয় কমে যায় এবং কর দেওয়ার মতো লোকের সংখ্যাও কমে যেতে থাকে। আবার পলিটিকাল ইকনোমিক দিক থেকে দেখা যায় যদি প্রশাসন এই অতিরিক্ত জিনিসের দাম নিয়ন্ত্রণ করতে অক্ষম হয় তাহলে ভোট ব্যাংক এর উপর একটা প্রভাব পড়তে পারে।



Source : United Nations Department of Economic and Social Affairs, Population Division. *World Population Prospects. The 2004 Revision.* New York: United Nations, 2005.

এত কিছু সমস্যার মধ্যে আশার আলো এইটাই যে, বয়স্ক যদি প্রগতিশীল হয় তাহলে সে নিজের বার্ষিক্য জনিত সমস্যা নিজেই নিয়ন্ত্রণ করতে পারে এবং সেটি অর্থনীতিকে একটি দিশা দেখায়। বর্তমানে যদি জাপানের পরিস্থিতি দেখি তাহলে দেখা যায় ষাট বছরের ওপর প্রায় ৬৬ শতাংশ মানুষ এখনো কর্মরত। শুধু তাই নয় জাপানি প্রায় 40 শতাংশ কোম্পানি আছে যারা ৭০ বছরের উপর বয়স্ক মানুষদের নিয়োগ করে চলেছেন। অনেক পরিবর্তনের মতই সময়ের সাথে সাথে বয়স্ক মানুষদের সম্মানে বাঁচা এবং কর্মরত থাকার ধারণাতেও পরিবর্তন এসেছে। গবেষণার জন্য এবং নীতির উদ্দেশ্যে, 65 বছরের উপর থেকে বয়স্কর তকমাটাকে গুরুত্ব না দিয়ে, 85 বয়স কে অতি বয়স্ক হিসাবে চিহ্নিত করা হোক যাদের দীর্ঘমেয়াদি যত্নের প্রয়োজন।

রায়বেঁশে রণনৃত্য ও বাগদি জাতি: গৌরবময় অতীত ও বিপন্ন ভবিষ্যৎ

ড. মিলিন রায়

অধ্যাপক, ইতিহাস বিভাগ

“নহে ঘৃণ্য জিনিষ এ’—

মহা মূল্যবান জিনিষ এ।”^১

বাংলার বিভিন্ন রণনৃত্যের প্রচলিত মধ্যে রায়বেঁশে নৃত্য সর্বাপেক্ষা গৌরবময়। রায়বেঁশেঃ রায় কথাটির অর্থ শ্রেষ্ঠ, বড় বা সম্ভ্রান্ত। ‘বেঁশে’ এর অর্থ বাঁশ ব্যবহারকারী বা বাঁশ থেকে তৈরি। রায়বেঁশে অর্থাৎ শ্রেষ্ঠ বাঁশের তৈরি হাতিয়ার নিয়ে যুদ্ধ করে। বাংলার বাগদি সম্প্রদায়ের মানুষেরা মল্লরাজাদের পদাতিক বাহিনীতে নিরেট বাঁশের তৈরি বল্লমের হাতল বা দণ্ড, লাঠি, রণপা, ধনুক ইত্যাদি নিয়ে যুদ্ধ করত। সারাবছর শরীর কর্মঠ, নীরোগ, যুদ্ধোপযোগী নীরোগ রাখার জন্য তোল, কাঁসীর তালে যে ছন্দবদ্ধ অনুশীলন করত তা পরবর্তীকালে রায়বেঁশে লোকনৃত্য নামে পরিচিত হয়।^২ বীরভূম জেলার বাগদি, বাউরি সম্প্রদায়ের বিবাহ অনুষ্ঠানে এই নৃত্য প্রদর্শন করত। রাঢ়বঙ্গের জমিদারদের সম্পত্তিরক্ষার কাজেও দেহরক্ষী হিসাবে বাগদিরা অনেকদিন যুক্ত ছিল। মল্লযুদ্ধে পারদর্শী বাগদিরা যুদ্ধের প্রস্তুতি হিসাবে খেলাধুলা ও শরীরচর্চায় অংশগ্রহণ করত। এর ফলে তারা বিভিন্ন লাঠি খেলায় পারদর্শী হয়ে উঠতে থাকে। কথিত আছে বাগদি লেঠেল তাঁর পাকা বাঁশের লাঠির সাহায্যে পঞ্চাশ বা একশ জনের মহড়া নিতে পারতেন।^৩ যোগেন্দ্রনাথ গুপ্তের *বাংলার ডাকাত* গল্পে আমরা লাঠি খেলার বিভিন্ন ঘটনার বিবরণ পাই। বাংলায় নৃত্যের যে নিদর্শনগুলি পাওয়া যায় তাঁর মধ্যে অন্যতম

হল রায়বেঁশে, ঢালী, কাঠি, নাটুয়া, পাইক নৃত্য ইত্যাদি। বাগদি জাতির ছেলেরা লাঠি খেলার পাশাপাশি বীরভূম ও তার পার্শ্ববর্তী অঞ্চলে রায়বেঁশে খেলাতেও বিশেষভাবে দক্ষ হয়ে উঠেছিল। তাদের নৃত্যের বীরোচিত ভাবভঙ্গী, অনবদ্য ছন্দ-চাতুর্য প্রত্যেককেই আকৃষ্ট করে।

“বাঙালী যোদ্ধার কি স্বরূপ দেখায়

তার সাক্ষাৎ মূর্তি যদি দেখবি তো আয়।

বোরো বুদ্ধর আর অজস্তার গুহা হতে

যেন উঠে এসেছে লোক বাংলার পথে।”^৪

রায়বেঁশের গৌরবধারা:

রায়বেঁশেদের অভ্যুত্থান, অজ্ঞাতবাস ও অবনতি, ইতিহাসে বাঙলার জীবনে যুগে যুগে পরিবর্তনের একটি প্রতীক স্বরূপ। গুরুসদয় দত্ত লিখেছেন — “অতি প্রাচীন যুগে, বাঙলাভাষার অভ্যুদয়ের পূর্বে, ইহাদের নাম যে কি ছিল তাহা আমরা জানি না; কিন্তু ইহারা যে খুব সম্ভবতঃ ভীমের বংশধর ও অর্জুনের রণতাপ্ত নৃত্যকলার উত্তরাধিকারী তাহা আমরা দেখিয়াছি। গঙ্গারাঢ় (গঙ্গারাষ্ট্র) যুগে যখন বাঙলা শৌর্য্যে-বীর্য্যে ভারতবর্ষের সর্বোচ্চ আসনে অধিষ্ঠিত ছিল, তখন হইতেই রাঢ় দেশে এই শ্রেণীর যোদ্ধারা শৌর্য্যগৌরবে গৌরবান্বিত হইয়া বাঙলার স্পার্টা নামে অভিহিত হইবার যোগ্যতা লাভ করিয়া আসিয়াছে।” রায়বেঁশের উদ্ভব নিয়ে বিতর্ক আছে। অজয় নদীর তীরবর্তী রাঢ় অথবা বীরভূম অঞ্চলের অধিবাসী এই রায়বেঁশেদের কথা খ্রীষ্টীয় একাদশ শতাব্দীতে

ঘনরামের “ধর্মঙ্গল”, ভারতচন্দ্রের “অন্নদামঙ্গল” কবিকঙ্কন “চণ্ডী” ও কবি রামপ্রসাদের কাব্যগ্রন্থের মধ্যে প্রাচীন বাংলার “রায়বেঁশে” যোদ্ধাদের সমর-কৌশলের উল্লেখ পাওয়া যায়। এই রায়বেঁশে যোদ্ধারা একাদশ শতাব্দীতে বর্ধমান জেলার ‘শ্যামরূপা’র নেতৃত্বে ময়না গড়ে লাউসেনকে আক্রমণ করেছিল। এরাই ষোড়শ শতাব্দীতে মান সিংহ র বাহিনীতে অন্তর্ভুক্ত হয়ে প্রতাপাদিত্যের সঙ্গে যুদ্ধ করেছিল।^{১৫} সন্মিলিত লোকনৃত্যের ধারাতে রণনৃত্যের শৈলী স্পষ্ট। এছাড়া ষোড়শ শতাব্দীতে প্রতাপাদিত্য ও মানসিংহের যুদ্ধে এদের উল্লেখ পাওয়া যায়। অন্নদামঙ্গল কাব্যে মানসিংহের যশোর যাত্রার বর্ণনায় বলা হয়েছে —

‘হাতীর আমারী ঘরে বসিয়া আমীর।
আপন লঙ্কর লয়ে, হইল বাহির।।
আগে চলে লালপোশ খাসবরদার।
সিফাই সকল চলে কাতার কাতার
তবকী ধানুকী ঢালী রায়বেঁশে মাল
দফাদার জমাদার চলে সদীয়াল।।^{১৬}

কেউ মনে করেন রায়বেঁশে নৃত্য শৈলী বয়স ১৭৫ বছরের কিছু বেশি। এর প্রথম উদ্ভব হয়েছিল মুর্শিদাবাদের বড়জগা ও খড়গ্রাম অঞ্চলে। পরে বীরভূম, বর্ধমান রাঢ়ের জেলাগুলোতে ছড়িয়ে পড়ে। যেমন লোকসংস্কৃতি গবেষক পুলকেন্দু সিংহ মনে করেন, ১৬০০ সালে ফতেসিং পরগণা (বর্তমান মুর্শিদাবাদ জেলার কিছু অংশ) দখল করার জন্য আকবর বাদশাহ সেনাপতি মান সিংহকে এই অঞ্চলে পাঠালে রাজস্থানের ভল্ল বা বল্লমধারী যোদ্ধারা পরবর্তী সময়ে এই অঞ্চলেই থেকে যায় এবং লেঠেল, পাইক-বরকন্দাজ হিসেবে কাজ করে। এরা সাধারণত জমিদারের হয়ে লাঠি-বল্লম নিয়ে শত্রুদের দমন করত।

দীর্ঘদিন পাশাপাশি বসবাসকারী বাগদি, হাড়ি, ডোম, বায়েনদের নিয়ে এই রাজস্থানের বল্লমধারীরা রায়বেঁশে দল গঠন করে।

১৯৩০-৩১ সালে গুরুসদয় দত্ত নতুন করে রায়বেঁশেকে বাঁচিয়ে তোলার চেষ্টা করেন। রায়বেঁশের কলাকুশলীরা প্রধানত বীরভূম জেলার চারকোল গ্রামে থাকতেন। বীরভূমের কীর্ণাহারের সরকার বংশের জমিদাররা চারকোল গ্রাম রায়বেঁশেদের বসবাসের জন্য দান করেছিলেন। এই গ্রামটি রায়বেঁশে গ্রাম নামেও পরিচিত। সেখানকার কলাকুশলী গোবর্দ্ধন প্রামাণিক, রামপদ প্রামাণিকদের নিয়ে প্রচার শুরু করেন। বাংলার অন্ত্যজ মানুষরাই মূলত এই সংস্কৃতির প্রধান ধারক। তাদের শারীরিক সক্ষমতায় মুগ্ধ হয়ে ভূস্বামীরা নিজেদের লেঠেল বাহিনীতে তাঁদের নিয়োগ করতেন। তাঁদের পরিধেয় ছিল সাদা ধুতির সঙ্গে কোমরে বাঁধা লাল ফেট্টি। সেটি কোমর বন্ধ হিসেবে ব্যবহার হলেও আসলে ছিল শৌর্য ও বীরত্বের চিহ্ন। রায়বেঁশে লোকনৃত্যের শিল্পীরা মূলত পশ্চিমবঙ্গের বীরভূম, মুর্শিদাবাদ, বর্ধমান জেলার অধিবাসী। এদের উৎপত্তি প্রসঙ্গে জানা যায় যে, এসমস্ত অঞ্চলের রাজ রাজা ও জমিদারদের এককালে রায়বেঁশে নামক সৈন্যবাহিনী এবং দেহরক্ষী ছিল।^{১৭} বাংলার “রায়বেঁশে” যোদ্ধাদের বংশধর, তাতে বিন্দুমাত্র সন্দেহ হতে পারে না। এর সঙ্গে যুক্ত হয়েছিল শারীরিক কসকলা কৌশল। রায়বেঁশে লোকনৃত্যের সাথে ঢোল এবং কাঁশি রয়েছে, যেগুলো ঢোল ও করতাল নামে বেশি পরিচিত। তাই মূলত, মধ্যযুগীয় বাংলার জমিদারের দেহরক্ষী দ্বারা নৃত্য পরিবেশন করা হয়েছিল। যে সম্প্রদায় এটি সম্পাদন করে তারা বাগদি সম্প্রদায় নামে পরিচিত। রবীন্দ্রচন্দ্রাবলী, তৃতীয়খন্ডের ‘খাপছাড়াতে’ও রায়বেঁশে নাচের উল্লেখ আছে। রায়বেঁশে বা রায়বেশে

নাচে মুগ্ধ ছিলেন বিশ্বকবি। এই নাচ প্রসঙ্গে তিনি বলেছিলেন, “রকম পুরুষোচিত নাচ দুর্লভ; আমাদের দেশের চিত্তদৌর্বল্য দূর করতে পারবে এই নৃত্য” বাস্তবিক এই নৃত্য দেখলে এটাকে নটরাজ শিবের রণতাণ্ডব নৃত্যের অবিকল প্রতিক্রম বলে মনে হয়।

বর এসেছে বীরের ছাঁদে,
বিয়ের লগ্ন আটটা
পিতল-আটা লাঠি কাঁধে,
গালেতে গালপাট্টা।
শ্যালীর সঙ্গে ক্রমে ক্রমে
আলাপ যখন উঠল জমে,
রায়বেঁশে নাচ নাচের ঝোঁকে,
মাথায় মারলে গাট্টা।
শ্বশুর কাঁদে মেয়ের শোকে,
বর হেসে কয় ‘ঠাট্টা’।^৪

রায়বেঁশে ও বাগদি জাতি:

বাংলার লেঠেল সম্প্রদায়ই রণনৃত্য রায়বেঁশের কাভারী। ১৯৩০-৩১ সালে এই সকল বীর মানুষগুলির কাছে যুদ্ধনৃত্য এবং শরীরচর্চার ক্ষেত্রস্বরূপ বাংলার রায়বেঁশেকে লোকায়ত সংস্কৃতির অঙ্গ হিসেবে তুলে ধরতে চেয়ে তিনি ওদের সঙ্গে যোগাযোগ শুরু করেন। সেই সঙ্গে অপরাধী তকমায় চিহ্নিত ঠগি বা ডাকাত দলগুলিকে শুভকর্মপথে আনার উদ্যোগ গ্রহণ করেন।^৫ এই যুদ্ধনৃত্যকে বাঁচিয়ে রাখার জন্য প্রতিষ্ঠা করেছিলেন বঙ্গীয় পল্লীসম্পদ রক্ষা সমিতির। সেখানে বাউল-ঝুমুর সার এগুলিও সংরক্ষিত হয়েছিল। পরাধীন ভারতবাসীর মনে জাতীয় চেতনা ও নাগরিকত্ববোধ তৈরিই ছিল এ আন্দোলনের প্রধান লক্ষ্য। ১৯৩১ তিনি এই রাইবেঁশেকে আরও উন্নতরূপ দান করে বিদ্যালয়ে অতিরিক্ত পাঠ্যরূপে তা জনপ্রিয় করে তুলেছিলেন।^{১০}

তাঁর মতে “প্রধানতঃ ভল্লধারী যোদ্ধা ছিল এবং ‘রায়বেঁশে’ নাম গ্রহণ করিবার পূর্বে খুব সম্ভবতঃ ভল্ল অস্ত্রের নামের সঙ্গে ইহাদের নামের সংযোগ ছিল। এই অনুমানের অপ্রত্যাশিত প্রমাণ পাওয়া যায় — ‘ভল্লা’ নামে যে একটা জাতি মুর্শিদাবাদ ও বীরভূম জেলায় এখনও বর্তমান আছে তাহা হইতে। এই ভল্লা জাতির লোক আধুনিক সমাজের শ্রেণীবিভাগ হিসাবে বাগদী জাতি শ্রেণীয়। ইহারা যে এককালে প্রবল বলশালী এবং যোদ্ধা শ্রেণীর ছিল তাহাতে বিন্দুমাত্র সন্দেহ নাই। বহুযুগের অবজ্ঞা ও দারিদ্র্যের নিষ্পেষণে ইহাদের আর্থিক অবস্থা অবনতির গভীরতম স্তরে আসিয়া পড়িয়াছে এবং যুগের পর যুগ, বৎসরের পর বৎসর অনশনে থাকিতে হয় বলিয়া, ইহাদের শারীরিক তেজস্বিতা ও শক্তির মাত্রা এত অভাবনীয় ভাবে হ্রাস পাইয়াছে।”^{১১} একটি গানের মধ্যে তিনি এই নৃত্যের পরিচয় তুলে ধরেছেন —

“মহা মদপাত্রের’ রায়বেঁশে সহায়
এমনি ছুটেছিল লাউসেনের ময়নায়
রাজ নগরবাসী বীররাজার বংশ
রায়বেঁশের সহায়ে করত শত্রু ধ্বংস।
রাজা মানসিংহের দুর্ধর্ষ ফৌজ রায়বেঁশে
এমনি নাচত উল্লাসে রণ বিজয় শেষে
কলিঙ্গের সম্রাটের পদাতিক বেশে
এমনি ছুটত রায়বেঁশের দল গুজরাট দেশে
থেকে ছদ্মবেশে অধঃপতিত দেশে
‘রায়’ বেঁশে নেচে রাইবেশের বেশে।”^{১২}

রায়বেঁশে নৃত্যশৈলী:

একাধিক বাহু-ভঙ্গী দেখতে পাওয়া যায় যেমন — বাহু ও হাতের ভঙ্গী দ্বারা তীরচালনা, অসিচালনা, বর্শানিক্ষেপ, অশ্বচালনা, শত্রুকে পরাস্ত করা হয়েছে বোঝাতে একজনের কাঁধের উপর আর একজন দাঁড়িয়ে

এই নাচ করে। নাচের শেষে দাঁড়িপাল্লা, কুমিরচলা, চড়কগাছ, তালগাছ, হনুমান ডন, যমদুয়ার ইত্যাদি বিভিন্ন কসরৎ তারা করে থাকে।¹³ এই নাচে ধুতি মালকোচা করে লাল শালুকে ধুতির উপর বাঁধতে হয় এবং শরীরের উপরের অংশ খালি থাকে। রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর গুরুসদয় দত্তকে লেখা এক পত্রে লিখেছেন — ‘দেশের জন সাধারণ বলতে যাদের বোঝায় সেই পল্লীবাসীরা তাদের নৃত্যগীতে, কাব্যকলায় অজস্র ভাবে প্রাণের আনন্দ প্রকাশ করেছে। মরা নদীর মাঝে মাঝে জল কুমিরের মতো এখনও তার অবশেষ দেখা যায়....তার মধ্যে একটি হচ্ছে নৃত্য। সরস্বতীর এই মহাদানকে আমাদের ভদ্রসমাজ অবজ্ঞা করে পেশাদারের ঘরে ঠেলে দিয়েছে জনসাধারণের মধ্যে আড়ালে আবড়ালে কিছু কিছু আছে সংকোচে আপনি তাকে অখ্যাতি থেকে মুক্ত করে সর্ব জনের মধ্যে তার আসন করে দেবার চেষ্টা করবেন।’¹⁴ তারাক্ষর বন্দ্যোপাধ্যায়ের ‘হাঁসুলী বাঁকের উপকথা’ উপন্যাসেও রায়বেঁশের উল্লেখ পাওয়া যায় —

‘আমার বিয়ে যেমন তেমন
দাদার বিয়ে রায়বেঁশে
আয় ঢকাঢক মদ খেসে।’¹⁵

সেকাল ও একাল:

পলাশীর যুদ্ধের পর বাঙালী সৈন্য সংগ্রহের প্রথা বন্ধ হয়ে যেতে থাকে। এর ফলে প্রাচীন অসংখ্য ‘রায়-বেঁশে’ যোদ্ধাদলকে যে দারুণ সমস্যার সম্মুখীন হয়ে জীবিকা নির্বাহের জন্য নানা সমস্যায় পড়তে হয়েছে, তা সহজেই অনুমান করা যায়। অনেক ‘রায়বেঁশে’কে যে অবস্থার পরিবর্তনে দস্যুবৃত্তি অবলম্বন করতে হয়েছিল তার উল্লেখ রয়েছে ঊনবিংশ শতাব্দীর প্রথম ভাগের ‘ইস্ট-ইন্ডিয়া’

কোম্পানীর ফি রিপোর্টে (Fifth Report, 1812)। এই সময় রায়বেঁশেদের কাছে এক বিষম বিভীষিকা রূপে উপস্থিত হয়। শত অভাব, যন্ত্রণায় বাংলার পথে পথে কাঙালবেশে ঘুরে বেঁচে গেছে। সেই রায়বেঁশেদের শিল্পধারা বাঁচিয়ে রাখার জন্য গুরুসদয় দত্তের নিষ্ঠা ও উদ্যোগ সঞ্জীবনী সুখার ন্যায় ছিল।¹⁶ তিনি লিখেছেন — “অষ্টাদশ শতাব্দীর শেষভাগ হইতে বাঙলার প্রাচীন রায়বেশে যোদ্ধাদের বংশধর দিগকে যে অধিকাংশ ক্ষেত্রে বৃহন্নলার নপুংসক বেশে অজ্ঞাতবাসে থাকিয়া, রণতাপ্তব নৃত্যকলা পরিত্যাগ করিয়া, কৃষ্ণলীলা ও বাই নাচের লাস্যবৃত্তি অবলম্বন করিয়া জীবিকা নিবর্বাহ করিতে হইত। ইহাদের যুদ্ধ ব্যবসার দ্বারা জীবিকা নিবর্বাহের সুযোগ এদেশে আর নাই। ইহাও আমরা দেখিয়াছি যে, বর্তমান বাঙলা দেশের লোক পুরুষের তাপ্তব নৃত্যের আদর করিতে এবং অর্থ বৃষ্টিতে ভুলিয়া গিয়াছে। তাহারা এখন কেবল চায় মেয়েলি বাইজী নৃত্য অথবা রাধা-কৃষ্ণের প্রেমের নৃত্য।”¹⁷ লাঠিয়াল, রক্ষীবাহিনীর যুগ আজ আধুনিক অস্ত্রশস্ত্রের কাছে বেমানান। বর্ধমান, বীরভূম, মুর্শিদাবাদের বাগদি, বাউরি, ডোম সম্প্রদায়ভুক্ত রায়বেঁশে পরিবারগুলি তাই আজ অস্তিত্বের সংকটের সম্মুখীন। তাই বাঁচার তাগিদে রণনৃত্যকারী এই মানুষগুলি অন্যান্য পেশা গ্রহণ করতে বাধ্য হচ্ছে। তাঁদের নতুন প্রজন্ম আজকাল প্রথাগত পেশা ছেড়ে চাষবাস, দিনমজুরি কিংবা শ্রমিক জীবনের মধ্যে প্রবেশ করেছে। তবে রায়বেঁশে লুপ্ত হওয়া থেকে বাঁচিয়ে রাখতে কিছু মানুষ আশ্রয় চেষ্টা করে যাচ্ছেন।¹⁸

সমাজের প্রাস্তিক অধিবাসী হিসাবে চিহ্নিত বাগদি, ভল্লা, হাড়ি, ডোম, মাল সম্প্রদায়ভুক্ত মানুষজন একদা রায়বেঁশের বিশেষ মর্যাদায় চিহ্নিত হয়েছিল। তবে দুশ্চিন্তার মূল কারণ হল, নতুন প্রজন্মের কেউ

আর তেমন ভাবে এই পেশায় আসছে না। তারা ক্রমেই এই পেশার প্রতি আগ্রহ হারিয়ে ফেলেছে। বাস্তবে রায়বেঁশে খেলা দেখিয়ে যে পারিশ্রমিক পাওয়া যায় তা দিয়ে দল, সংসার চলে না। তাই কখনও পায়ে বড় বাঁশ বেঁধে (রণপা) জোকার সাজেন, সেখানেও অনাদরের ঘনমেঘ। শিল্পীদের নতুন প্রজন্ম বাধ্য হয়ে অন্যান্য পেশা গ্রহণ করতে। তবু কিছু মানুষ আপ্রাণ লড়াই চালাচ্ছে এই শিল্পকে টিকিয়ে রাখার জন্য। মানুষের আগ্রহ পুনরায় বৃদ্ধি পেলে, বাংলার প্রতিটি গ্রামের প্রতিটি স্কুলে এই নৃত্য প্রবর্তিত হলে তাঁদের যে শক্তি ও সাহসের নতুন এক দিকের উন্মোচিত হবে তা নিঃসন্দেহে বলা যেতে পারে। বাংলা দেশের পল্লীগ্রামের নৃত্য প্রতিভা যে আবার সমগ্র বাংলার সীমা অতিক্রম করে ভারতের সর্বত্র ছড়িয়ে পরবে তার প্রত্যাশা আমরা করতে পারি।

সূত্র নির্দেশ :

- 1 দত্ত গুরুসদয়, বাংলার লোকশিল্প ও লোকনৃত্য, ছাতিম বুকস, কলকাতা, ২০০০, পৃ. ২৩৪।
- 2 দত্ত গুরুসদয়, তদেব, পৃ. পৃ. ১৯-২৪।
- 3 কুণ্ডু সন্তোষকুমার, বাঙালী হিন্দুজাতি পরিচয়, প্রেসিডেন্সি লাইব্রেরী, কলকাতা, ২০০৮, পৃ. ১৮৬।
- 4 দত্ত গুরুসদয়, ২০০০, প্রাগুক্ত, পৃ. ২১৭।
- 5 দত্ত গুরুসদয়, ২০০০, প্রাগুক্ত, পৃ.পৃ. ২১৭, ২৩৫।
- 6 বিশ্বাস অচিন্ত্য, বাংলা সাহিত্যে নিম্নবর্গের আখ্যান ও ব্যাখ্যান, পূর্বালোক, কলকাতা, ২০১৩, পৃ.২১৩।
- 7 আদিত্য মুখোপাধ্যায়, রায়বেশে জীবন ও শিল্প, আনন্দ পাবলিশার্স প্রা: লি:, কলকাতা, ২০১২, পৃ.পৃ. ১৫-২৩।

- 8 রবীন্দ্রনাথ ঠাকুর, খাপছাড়া, রবীন্দ্রচিনাবলী, তৃতীয় খন্ড, পশ্চিমবঙ্গ সরকার, শ্রী সরস্বতী প্রেস লিমিটেড, কলকাতা, ১৯৮৩, পৃ.৪৫২।
- 9 রাগিনী দেবী, ডান্স ডায়ালেক্টস অফ ইন্ডিয়া, মতিলাল বানোয়ার্নিদাস পাবলিকেশন, ২০০২, পৃ.পৃ. ১৯৩-১৯৪।
- 10 ভট্টাচার্য আশুতোষ, বাংলার লোকসংস্কৃতি, ন্যাশনাল বুক ট্রাস্ট, ইন্ডিয়া, নয়াদিল্লী, ২০১৭, পৃ.১২৩।
- 11 দত্ত গুরুসদয়, ২০০০, প্রাগুক্ত, পৃ. ২৫৯।
- 12 দত্ত গুরুসদয়, দ্যা লিভিং ট্র্যাডিশন অব দ্যা ফোক আর্ট অ্যান্ড লেটারস, লন্ডন, ১৯৩৬, পৃ.পৃ. ১৯-২১।
- 13 সেন শুচিত্র, বীরভূমের অতীত ও বর্তমান সমাজচিত্র: সংক্ষিপ্ত সমীক্ষা, পশ্চিমবঙ্গ, বীরভূম জেলাসংখ্যা, তথ্য ও সংস্কৃতি বিভাগ, ফের্গারী, কলকাতা, ২০০৬, পৃ. ১১৬।
- 14 ব্যানার্জী নরেশ, নৃত্য গুরু, বিশ্বভারতী, তারিখ-১০.০৩.২০১৭ (বিশ্বভারতীর কলা ভবনে ব্যানার্জী নরেশ এর তত্ত্বাবধানে বিশ্বভারতীর ছাত্র-ছাত্রীদের তত্ত্বাবধানে রায়বেঁশে নৃত্য পরিবেশিত হয়েছিল)।
- 15 গুরুসদয় দত্তকে লেখা রবীন্দ্রনাথের পত্র, ২৭শে ফাল্গুন, ১৩৩৭ বঙ্গাব্দ, গুরুসদয় পেপারস, আর.বি.এ., বিশ্বভারতী এবং বিশ্বভারতী নিউজ, সেপ্টেম্বর, ১৯৩৫, পৃ.৫৯।
- 16 নরেশ বন্দ্যোপাধ্যায়, গুরুসদয় দত্ত জীবন ও রচনাপঞ্জী (প্রথম সংস্করণ, গুরুসদয় সংগ্রহশালা, ব্রতচারী গ্রাম, গুরুসদয় দত্ত ফোক আর্ট সোসাইটি।
- 17 দত্ত গুরুসদয়, ২০০০, প্রাগুক্ত, পৃ. ২৬৫।
- 18 দত্ত গুরুসদয়, বাংলার বীর যোদ্ধা রায়বেঁশে, বাংলার ব্রতচারী সমিতি, ক্যালকাটা, ১৯৯২, পৃ.পৃ. ২১, ২৫, ৪৭-৫১।

“নেই কাজ তো খই ভাজ”

ডাঃ পদ্মিনী মুখোপাধ্যায়
অধ্যাপক, উদ্ভিদবিদ্যা বিভাগ

ইদানীং একটা কথা খুব শোনা যায়, “জেনেরিক মেডিসিন”। এবার আনন্দমোহনে আনন্দের কথাখান বলে একটু আনন্দ ভাগ করে নিই। ভারত সরকারের “জনওষধি কেন্দ্র” ভারতবর্ষের প্রায় সব শহর ও শহরাঞ্চলেও তৈরি হয়েছে। তাদের আউটলেট অর্থাৎ খুচরো বিক্রয়কেন্দ্র, কলকাতা শহর ও শহরতলিতেও খুলেছে। একটু দেখে, খবর নিয়ে সটান দোকানে হাজির হলে দোকান থেকে বেড়িয়ে আসার পর আপনার পকেটটি অনেকটা ভারি থাকবে আর মুখটিও সম্ভবত ভরা থাকবে। এখানে ওষুধের গুণমান নিয়ে আপনার বন্ধুরূপী শত্রুটি শেষ আক্রমণও শাণাবে আর আপনাকে অস্থির করে তুলবে। আসলে গুণমান বরং অনেক কোম্পানীর থেকে ভাল তো বটেই বরং “অতিভাল” শব্দ সংযোজনেও দ্বিধা থাকবে না।

একবার এক ভদ্রমহিলার কোমরের ব্যথার জন্য এক ডাক্তার “প্যারাসিটামল” লিখেছিলেন। ভদ্রমহিলা রেগে আগুন। “বললাম কোমরের ব্যথা, দিল জ্বরের ওষুধ। পাড়ার ক্লাবে বড় টাকা চাঁদা দেওয়ায় সেবারের মতো ডাক্তারবাবুর চেস্বার বন্ধ করে দিতে হয়নি। আমাদের দেশে “অষ্টোতর শতনাম” তো অতি পরিচিত তাই তা সুন্দরভাবে চিকিৎসাশাস্ত্রেও ব্যবহৃত হয়েছে।

জেনেরিক নামের ওষুধ লেখা নিয়ে যে স্বাস্থ্য আন্দোলন ভারতবর্ষ বা পশ্চিমবঙ্গে হয়নি তা নয় তবে মুনাফাবাজদের চাপে তা সমগ্র জনমানসে পৌঁছাতে পারে নি। আসলে আমাদের দেশে সবথেকে নরম

মাটি হচ্ছে চিকিৎসা সাম্রাজ্য। এখানে ভুল বুঝিয়ে বা না বুঝাতে দিয়ে ব্যবসা করাটা অতি সুগম। তাই বিদেশের ওষুধ কোম্পানিগুলো ভারতবর্ষের বিশাল জনসংখ্যার বাজার ধরতে কয়েকধাপ এগিয়ে আছে। “উৎকোচ” ভারতবাসীর এখন জিনগত সমস্যা। তার রসে পুষ্ট হয়ে চিকিৎসা সাম্রাজ্য এক রসাল পানীয় যা অতিসুন্দরভাবে অনায়াসে গলাধরকরণ করা যায়। এতে ঠোট ভেজা তো দূর, শরীরের কতটুকু দূষিত হল বা ভাল থাকল তার চিহ্নও বোঝা যাবে না।

সাম্প্রতিককালে প্রায় সারা পৃথিবীতেই জেনেরিক নামে ওষুধ লেখা নিয়ে আন্দোলন সংগঠিত হচ্ছে। পশ্চিমবঙ্গে এ ব্যাপারে অবশ্যই পিছিয়ে নেই। ৮৫-৮৬ সাল থেকে বিভিন্ন স্বৈচ্ছাসেবী সংস্থা ও সংগঠন আন্দোলন চালিয়ে যাচ্ছেন। ১৯৫৩ সালে প্রথম বিশ্বস্বাস্থ্য সংস্থায় ওষুধের জেনেরিক নাম ব্যবহার নিয়ে আলোচনা হয়।

এবার আসি জেনেরিক নামের ওষুধ লেখায় লাভ কি হতে পারে —

- ১) রোগীরা ও সাধারণ জনসাধারণ ওষুধের রাসায়নিকটির প্রকৃত নাম ও পরিচয় জানতে পারবেন।
- ২) রোগী, স্বাস্থ্যকর্মী ও আপামর জনসাধারণ, কাউকেই ওই ওষুধের পঞ্চশ কোম্পানীর পঞ্চশখানা নাম মনে রাখতে হবে না। এক নামেই অষ্টোতর শতনাম মিশে থাকবে।
- ৩) কোন রোগী যখন তাঁর সমস্যার সমাধান না হওয়ায় অন্য ডাক্তারের কাছে যান তখন তিনিও ঐ

ওষুধের অপর নামটি লিখে দেন আর রোগীও গর্বভরে সুস্থতার আশায় দোকানে কিনতে যান এবং দাম বেশি হওয়ায় আত্মতৃপ্তি নিয়ে বাড়ি ফেরেন আর চতুর ডাক্তারবাবুরও ড্রয়ার উপচে পড়তে থাকে।

৪) তাই জেনেরিক নামে ওষুধ কিনলে রোগীর অনেক সচেতন থাকবে এবং তার মাত্রা, অপব্যবহার, বিষক্রিয়া সব দরকারে পড়ে নিতে পারবে তাঁদের অতি প্রিয় মুঠোফোন থেকে।

৫) কোথাও গেলে সেখানেও যে কোন ওষুধের দোকানে ঐ একই নামের ওষুধ মিলবে এবং তার দাম সম্বন্ধেও রোগী সচেতন হবে।

৬) সারা ভারতবর্ষে আইনি ব্যবস্থাকে বুড়ো আঙুল দেখিয়ে বেআইনি দিকে উঁকি মারা এক সহজাত প্রবৃত্তি যার ফলে অন্যায়াভাবে মুনাফা অর্জনের লালসা সম্পূর্ণতা পায়।

৭) স্নাতক স্তরের পাঠ্যপুস্তকে সহজ মাতৃভাষায় এই নিয়ে একটা ছোট অংশ থাকলেও ভাল বই মন্দ তো হবে না।

৮) ওষুধভিত্তিক তালিকা (ফরমুলারি), মাত্রা, ব্যবহার বিধি তৈরি বড্ড জরুরি। CIMS, MIMS, IDR, Drug Today নামের অতিপ্রচলিত বইগুলোর প্রয়োজনীয়তা সম্পর্কে নতুন করে ভাবা দরকার। জেনেরিক নামের তালিকা থাকলে তা সাধারণের বুঝতে সুবিধা হবে এবং সতর্ক হওয়ায় তার আর্থিক অপচয়ও অনেকাংশে কমতেই পারে।

উপরের আট দফা ব্যবস্থা চালু থাকলে কারও দফা রফা হবে কিনা জানিনা তবে সাধারণ মানুষ আর্থিক অপচয়ের হাত থেকে বাঁচতে পারে। এমনটা আশা তো করাই যায়।

ট্যান্সি নাম্বার 1729 ও অজানা বাড়ির ঠিকানা

ড. প্রিয়তম দত্ত

ভারপ্রাপ্ত অধ্যক্ষ এবং অধ্যাপক, রসায়ন বিভাগ

1887 তে জন্ম, মাত্র 33 টা বসন্ত দেখেছে জীবনে; এক ব্রিটিশ আস্ত এক বইই লিখে ফেলল ওই ভারতীয়র উপর, স্বাধীনতার আগেই 1940 এ। বইয়ের নামটাও ওই ভারতীয়র নামেই।

Sorry, এর পর ওর নামটা বলে দেওয়ার জন্য কোনো প্রাইজ দিতে পারছি না।

শ্রীনিবাস রামানুজান। ব্রিটিশ ভদ্রলোকটি : জি. এইচ হার্ডি।

হার্ডি ওর বইতে (Ramanujan) এক মজার গল্প শুনিয়েছেন :

শ্রী খুব অসুস্থ, হাসপাতালে। হার্ডি এসেছে দেখা করতে। হার্ডি বলল —

* ট্যান্সি করে এলাম বুঝলে, ট্যান্সি নাম্বারটা নেহাতি হাবাগোবা, নিরামিষ — 1729 কি বলো!

প্রায় লাফিয়ে উঠল শ্রী,

আরে না না ! খুবই মজার নাম্বার 1729.

* কি রকম?

$1729 = 1 + 1728$.

* তো?

$1729 = 1 + 1728 = 1^3 + 12^3$; কি বুঝলে?

* কি আবার? দুটো কিউব এর যোগ 1729! তা এরকম গুচ্ছের নাম্বার আমি এখানে দাঁড়িয়েই বলে দিতে পারি। $9 = 1^3 + 2^3$; $35 = 2^3 + 3^3$; ...

আরে শোনোইনা। এটাও তো হয়:

$1729 = 1000 + 729$!

* আরে 1729 কে আরো অনেক ভাবেই লিখতে পারো, আর সেটা অন্য যে কোন নাম্বার কেই

কিন্তু $1729 = 1000 + 729 = 10^3 + 9^3$, এবার?

* তুমি বলছো একই নাম্বারকে দুটো কিউবের যোগ হিসেবে, দু ভাবে লেখা, তাইতো?

ঠিক তাই।

* কিন্তু 1729 কেন, এরকম নাম্বারও আমি এখনি কয়েক গণ্ডা বের করে দিতে পারি!

তা পারো। কিন্তু 1729 এর থেকে ছোটো এরকম কোন নাম্বার খুঁজে পাবে কি?

* দাঁড়াও দাঁড়াও, তুমি বলছো দুটো কিউবের যোগ এবং দুভাবে, এরকম নাম্বারদের সংসারে 1729 ই হচ্ছে কনিষ্ঠতম সদস্য?

তাইই রো।

* Then I must say 1729 is an interesting number. পারো তুমি!!!

এরই ছায়ায় Henry Dudeney, ওর Canterbury Puzzles (1907) বইয়ে দিলেন এই ধাঁধাটি :

“9 কে দুটি rational নাম্বার এর কিউবের যোগ করে লিখতে হবে - কিন্তু দু ভাবে।”

একটাতো সোজা। $9 = 1^3 + 2^3$; কিন্তু অন্যটা? কঠিন, খুবই কঠিন। ক্যালকুলেটর নয়, কম্পিউটার প্রোগ্রাম করে দেখতে পারো। আমি দিলাম না।

আজকের ধাঁধা :

“একটা লম্বা রাস্তার, এক ধারেই, সার দিয়ে রাস্তা বরাবর একের পর এক বাড়ি আছে। বাড়িগুলো নাম্বার দেওয়া, ধরো $1, 2, \dots \rightarrow N$.

তুমি কত নাম্বার বাড়ির মুখোমুখি দাঁড়ালে তোমার বাঁ পাশের সমস্ত বাড়িদের নাম্বারগুলোর যোগফল,

তোমার ডান পাশের বাড়ি নান্দারদের যোগফলের সমান হবে।”

Robert Kanigel রামানুজনের জীবনীভিত্তিক একটি বই লেখে (1991) “The Man who Knew Infinity”, তাতে ও লিখেছে “শ্রী মনে মনে অঙ্কটি কষে যে উত্তরটা দিল সেটা একটা continued fraction”.

Paul Weidlinger 1995 এ ধাঁধাটির স-বিশ্লেষণ সমাধানটি দিল ওর A Ramanujan Puzzle বইতে। এবং সেটা শ্রীর মুখে মুখে করা উত্তরটাই। একটু দেখি, কি বলো?

ধরো তুমি n তম বাড়ির সামনে। তাহলে তোমার দু-দিকে সমান দুটো যোগফল হবে

$$1+2+3+\dots+(n-1) = (n+1)+(n+2)+\dots+N.$$

দুদিকেই 1 থেকে n যোগ দাও :

$$2.[1+2+\dots+(n-1)] + n = 1+2+3+\dots+N.$$

$$\text{বা, } 2.n(n-1)/2 + n = N.(N+1)/2$$

$$\text{বা, } n^2 = (N^2+N)/2 :$$

$$\text{বা, } N^2 + N - 2.n^2 = 0; N \text{ এর দ্বিঘাত সমী।}$$

এখন শ্রী-তে লাগাও শ্রীধরাচার্য :

$$N = [-1+(1+8 n^2)^{(1/2)}]2 (1)$$

বাড়ির সংখ্যা তো আর সাড়ে চুয়াত্তর বা সোয়া বাহান্ন হয় না; তাই N কে হতে হবে পূর্ণ সংখ্যা। আর তাহলে

$$(1+8.n^2) \text{ কে হতে হবে বর্গ সংখ্যা, ধরো } p^2 \text{ 1 মানে, } 1+8.n^2 = p^2$$

$$\text{বা, } p^2-8.n^2-1 = 0 (2)$$

দেখতে নিরীহ, কিন্তু এটি একটি বিশেষ গোত্রের ইকুয়েশন (Pell equation), p ও n , দুটোই অজানা, তাই না?

p যদি 3, n তবে 1; $3^2-8.1=1$; মিলে যাচ্ছে। আর (1) থেকে পাবে $N = 1$. মানে একটাই বাড়ি। ঠিক দাঁড়ালো না, তাইতো?

বোঝাই যাচ্ছে (2) ও (1) থেকে (p , n ও N) এর একাধিক মান পাবো। আমি আরেকটা দিলাম :

$$p = 17, n = 6, N = 8. \text{ মানে এরকমটা হ'ল :}$$

1 থেকে 8 বাড়ির নান্দার; তুমি n তম মানে 6 নান্দার বাড়ির সামনে। তোমার দুদিকের বাড়ি নান্দার এর যোগ $1+2+3+4+5=7+8=15$.

কি, ঠিক তো?

দ্যাখো তো অন্তত আরেকটা উত্তর খুঁজে পাও কিনা।

ভিতরকণিকার ম্যানগ্রোভে ফিশিং ক্যাটের দর্শন

ড. শৌণক দত্ত

অধ্যাপক, রসায়ন বিভাগ

মোবাইলে চার্জ প্রায় শেষ। আর কিছুক্ষণের মধ্যেই এক্কেবারে ঠান্ডা হয়ে যাবে। রাতে যে যেখানে পেরেছি শুয়ে পড়েছি। আমার জুতোগুলো খোলা আকাশের নীচে রাতে বৃষ্টির জলে ভিজ়ে চপচপ করছে। ধীরে ধীরে ভোরের আলো ফুটছে। পূর্ব দিকের আকাশ ফর্সা হয়ে আসছে। আমরা ঘন ম্যানগ্রোভ অরণ্যের মধ্যে দিয়ে একটা ছোট স্টিমারে চড়ে ভিতরকণিকার সরকারি রিসর্টে ফিরছি।

গত চব্বিশ ঘন্টা মন থেকে সহজে মুছে ফেলা যাবে না।

গতকাল দুপুরে মধ্যাহ্নভোজ সেরে ভিতরকণিকার রিসর্ট থেকে ছোট বোটো রওনা দিই পূর্ব দিকে। উদ্দেশ্য ঘন ম্যানগ্রোভ ফরেস্টে ফিশিং ক্যাট অর্থাৎ বাঘরোলের দর্শন। ভারতবর্ষে যে-কটি ছোট বিড়াল প্রজাতির প্রাণী আছে, বাঘরোল তার মধ্যে অন্যতম। পশ্চিমবঙ্গের রাজ্য প্রাণী এই বাঘরোল প্রধানত জলাভূমি জাতীয় এলাকায় থাকে। তবে আজকাল এদের দেখতে পাওয়া বেশ কঠিন, জলাভূমি কমে যাওয়ার কারণে এরা বিপন্ন। নদীপথে যেতে যেতে কুমির, সিন্ধু ঙ্গল, সিনামন বিটার্ন আরো অনেকরকম সামুদ্রিক পাখি দেখতে পেয়েছি। গন্তব্যের ব্যাপারে সঠিক ধারণা আমার নেই, আছে বিজয়ের। ফিশিং ক্যাট অভিযানে বিজয় আমাদের গাইড। ওর তত্ত্বাবধানে এবারে ভিতরকণিকাতে আসা।

অন্তত চার ঘন্টার নদী সওয়ার পর যে জায়গাটায় পৌঁছালাম, সেখানে নদী বেশ সরু। আর চারপাশে ঘন ম্যানগ্রোভের জঙ্গল। আমাদের বোট থেকেছে।

সন্ধ্যা নেমে গেছে, তাই সঠিকভাবে ঠাহর করা যায়না আশেপাশে কি আছে। অন্ধকারে চোখ সইতে যেটুকু সময় লাগে, তাতে বুঝেছি ঘন জঙ্গলে অজস্র জোনাকি, আর আকাশে তারার রাশি। নির্জন এই বনভূমিতে যেন কেউ কোনোদিন আসেনি, আসবেওনা। ঝাঁঝের ডাকে একরকম নেশা হয়ে যাচ্ছিল। বিজয় ইতিমধ্যে টর্চ নিয়ে এদিক ওদিক দেখতে শুরু করেছে কোথাও কিছু পাওয়া যায় কিনা।

আমরা বসে ক্যামেরা সেটিংস দেখে নিচ্ছি। ফিশিং ক্যাট দেখলেই ছবি তুলবো, সেই আশায় অপেক্ষা। টুকটাক গল্প চলছে। আমরা এসেছি বিভিন্ন প্রদেশ থেকে। আমি বাঙালি হলেও, বাকিরা দিল্লি বা কর্ণাটকের, তাই গল্পের ভাঙার অফুরান। আমার নিজস্ব কাজের কারণে আসতে একদিন দেরি হয়েছে। ভিতরকণিকা আসার পর থেকে আমরা নানারকম মাছরাঙা, লেপার্ড ক্যাট দেখেছি। কিন্তু এখন এত আশা নিয়ে যার জন্য এতটা নদীপথ পেরিয়ে আসা, তার দেখা নেই।

অপেক্ষা আর অপেক্ষা। আকাশে মিটি মিটি তারাগুলো টিমটিম করে আমাদের সঙ্গে সেই অপেক্ষায় দোদুল্যমান। বিজয় এসে বললো, “আপনারা খেয়ে নিন, অনেক রাত হল”। আসার পথে বিজয়ের চেনা একটা গ্রাম থেকে রাতের খাবার তুলে নেওয়া হয়েছে। হাতঘড়ি বলছে রাত দশটা। অর্থাৎ, এখানে অপেক্ষা করছি প্রায় চার ঘন্টা। কি আর করা, খেয়ে নিলাম সবাই। মাংস ভাত দিয়ে রাতের খাওয়া ভালোই হল। খাওয়ার থেকেও পরিবেশটা বড়ই

মনোমুগ্ধকর। বোটে হারিকেনের আলো, আর চারিদিকে ঘুরঘুটি অন্ধকার। কিন্তু খেতে আর কতক্ষণ। তারপর? নদীর বুকে, নিস্তব্ধ জঙ্গলের মাঝে, উড়ন্ত জোনাকির আলোয়, প্রায় নিস্তব্ধ অন্ধকারে অপেক্ষা আরো দীর্ঘায়িত হচ্ছে। তবে এই পরিবেশ আর কবে কোথায় পাবো জানিনা।

এখানে বলে রাখা ভালো, পরের দিন সকাল দশটায় আমার ফ্লাইট ভুবনেশ্বর থেকে। অতএব আমাদের হাতে অফুরন্ত সময় নেই। গভীর রাতে নিজেদের একটা সময় ঠিক করতে হবে যে এবারে আর ফিশিং ক্যাট দেখা গেলো না, ফেরা যাক।

ইশ! আগের দিন যদি এসে পৌঁছে যেতাম তাহলে একদিন বেশী পাওয়া যেত। তখন না হয় আর একবার চেষ্টা....এই সব ভাবতে ভাবতে ছোট কেবিনে সারেং এর পাশে বসে হাতে ক্যামেরা নিয়েই ঘুমিয়ে পড়েছি। শুধু আমি নয় বাকি সবাই, যে যেখানে পেরেছে শরীর এলিয়ে দিয়েছে। বিজয় কিন্তু সজাগ ওর টর্চ নিয়ে। হাতঘড়ি দেখা হয়নি। ঘুম ভাঙলো একটা হইচই তে। বিজয় বলছে ক্যামেরা নিয়ে আসুন। দেখা গেছে। আমরা ঘুম চোখে ক্যামেরা সেটিংস ঠিক করতে করতে বোটের ধারে এলাম। দূর থেকে প্রাণীটা দেখেই গায়ে শিহরণ জাগলো। নিজের আমেজে একটা বিড়াল জাতীয় প্রাণী ম্যানগ্রোভের জঙ্গলের ধারে নদীর ধার দিয়ে জল কাটিয়ে হাঁটছে। শব্দ নেই কোনো। তার

চলায় আছে এক অসাধারণ ক্ষিপ্রতা। বোঝাই যায়, রাতে শিকারে বেরিয়েছে। আমাদের একপ্রকার অগ্রাহ্য করে চলছে। একটু এগিয়ে যাওয়া হল। একটা ফাঁকা জায়গা দেখে একটু অপেক্ষা। ওর চলন যেরকম তাতে ও আসবে এখানে। সময় মাত্র পাঁচ দশ সেকেন্ড। তার মধ্যেই ছবি তুলতে হবে।

সামনে এসে একটা গাছের ঝোপে কি যেন শুঁকছে, আবার হেঁটে চলে। উত্তেজনায় হাত কাঁপছে, হাত স্টেডি না করতে পারলে রাতে ভালো ছবি করা মুশকিল। যাক, শেষ পর্যন্ত ছবি হয়েছে। তবে এই অভিজ্ঞতার দরুণ মেমোরি কার্ডের থেকেও মনের মেমোরির ভান্ডার একেবারে কানায় কানায় পরিপূর্ণ। সময় দিলে আরো ছবি হবে, কিন্তু আমাদের আর দেরি করা যাবেনা। এখনই আড়াইটে বেজে গেছে। এরপর আর ফ্লাইট পাবোনা।

তবে সত্যি কথা বলতে কি এখনো জানিনা ফ্লাইট পাবো কিনা। এখনি প্রায় ভোর পাঁচটা। আর আধ ঘন্টার মধ্যে ভিতরকণিকার রিসর্টে ঢুকবো। তারপর সব জিনিসপত্র গুছিয়ে নিয়ে ভুবনেশ্বর যাত্রা। গাড়িতে চার ঘন্টা। একেবারে মুখে মুখে ফ্লাইট ধরতে হবে। বাকিরা ঘুমোচ্ছে। আমার ঘুম ভাঙতেই দেখলাম হাতের কাছে পেন, প্যাড আর প্রায় মৃত মোবাইল ফোন। তাই টাটকা টাটকা ফিশিং ক্যাট দেখার অভিজ্ঞতা লিখে রাখার লোভ সামলাতে পারলাম না।



एक और दिन

निशांत कुमार चौरसिया

बी.ए. जनरल, तृतीय वर्ष, सेमेस्टर २

मेरा घर नहीं कोई आलीशान मजिलें इमारत
मगर फिर भी जाना है
वहां पर अब वक्त करता शरारत
फिर भी जाना है
लौटूंगा कब, इसका तो कोई अंदाजा नहीं
मगर एक और दिन
मुझे मेरे घर में बिताना है
यह घर अब शायद मुझे अपनाएगा नहीं
इसकी यादें दीवारों से बाहर
मुझमें समाएंगी नहीं
अब मैं फिर कभी जी भर के यहां जी नहीं सकता
वक्त मुझे यहाँ ज्यादा देर ठहराएगा नहीं
मगर वक्त को नहीं, अपने आप को समझाना है
मुझे फिर एक बार मेरे घर जाना है

संक्षिप्त विवरण :

“एक और दिन” एक कविता है जो उच्च शिक्षा के लिए अपने शहर को छोड़ चुके युवा व्यक्ति की मिश्रित भावनाओं को उजागर करती है। यह कविता अपने बचपन के घर में वापस आने पर उत्पन्न होने वाली असंयम और लालसा की भावना में गहराई से जाती है।

संघर्ष की राह पर

राघव मिश्रा

सेमेस्टर 5th (B.Com Honours)

संघर्ष की राह पर चला हूँ।
न जाने मंजिल मिलेगी या नहीं
पग कहता है, रूक जा जरा।
पर मन कहता है, क्या तेरा यही है अस्तित्व ?
संघर्ष की राह पर जो रूकते हैं।
मंजिल की प्राप्ति नहीं हो सकती है।
संघर्ष की राह पर चलना इतना सहज नहीं
बड़ा ही दुर्लभ है। उसे ही मंजिल मिलती है,
जो दुर्लभ मुश्किलों में हंसते हंसते आगे बढ़ते है।
मैं भी आगे बढ़ा हूँ ना जाने किस राह पर जाऊंगा।
इतना तो कह सकता हूँ।
मिले ना मिले सफलता जगत में
संघर्ष की राह को ना त्यागूंगा।
आशा है हमको भी सफलता मिलेगी
संघर्ष पथ पर आगे बढ़ने की।

एक नारी के मन की बात

ईशा साव
पूर्व छात्रा (बी.ए.ज.)

काश कभी मैं अपने लिए
कुछ अपना सा कुछ कर पाती।
काश कभी अपने सपनों में भी,
मैं कुछ रंग भर पाती।
काश कभी मैं अपने लिए,
कुछ अपना सा कर पाती।
सबके बारे में सोचा करती हूँ,
काश मैं अपना निर्णय भी ले पाती।
काश कभी मैं अपने लिए,
कुछ अपना सा कर पाती।
जीवन रूपी इस मंदिर में,
रौशन सा एक दिया जलाती।
काश कभी मैं अपने लिए,
कुछ अपना सा कर पाती।

मुझे आदत नहीं बातों की

ब्यूटी चौधरी
पूर्व छात्रा, आनन्द मोहन कॉलेज

मुझे आदत नहीं बातों की, कुछ कर
दिखाना चाहती हूँ।
रात को रवि, धरती को स्वर्ग
बनाना चाहती हूँ।
मेरी मंजिल के दरवाजे भले ही बंद हैं,
हिम्मत और मेरे हौसले बुलंद हैं।
फनाह कर सकूँ दरिदों को ऐसी
साजिश बनना चाहती हूँ।
दिवाली मे रंग, मैं होली में आतिश
बनना चाहती हूँ।
सामने मेरे पहाड़ बड़े या दीवारें,
कितनी ही ऊँची हो,
मुझसे टकराने वालों की आँखें,
हमेशा नीची हो।
जीत ना पाऊँ फिर भी मुकाबला
करना चाहती हूँ।
इतिहास के पन्नों में अपना भी नाम
लिखना चाहती हूँ।
क्यों है राह मे हमें इतने कांटे
दिए हैं।
क्यों हर मंथन के विष हम
पिए हैं।
सहानुभूति का पा नहीं,
मैं विश्वास चाहती हूँ।
ज्यादा कुछ नहीं बस थोड़ा
सम्मान चाहती हूँ।

खुबसूरती या ख्याल

ज्योतिका प्रसाद

अतिथि प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग

एक स्त्री जिसके अस्तित्व व आचरण पर
दुनिया करती है हजार सवाल।
एक रोज उसके मन-मस्तिष्क में आया ये सवाल
तू ज्यादा खुबसूरत है या तेरे ख्याल
स्त्री जो चन्द लम्हों की खुशी के लिए,
बिखेर दी जाती हैं।
फिर सिसकियों को दफन कर
समेट दी जाती है।
जब दुनिया बुनती है एक स्त्री के
सपनों को कैद करने का जाल
तब जरूर आता होगा उसको
अपनी हार का ख्याल।
पर फिर भी वो कहां हार मानती है
खंगालती अपना अंतर्मन

बांधती है मुट्ठी,
और फिर उठ खड़ी हो जाती है
वो स्त्री है
खुद उदास रह जाती है।
अपने सपनों को मार कर भी,
औरों का मन जीत जाती है।
जब दुनिया स्त्री को
उसकी खुबसूरती से आंकती है
एक स्त्री अपने ख्यालों से
दुनिया को संवारती है।
तो हे! स्त्री मत रख
अपने मन-मस्तिष्क में कोई मलाल
जितनी खुबसूरत तू है
उतने ही सशक्त हैं तुम्हारे ख्याल

भारतीय लोक संस्कृति और पश्चिम बंगाल

डॉ. रीना सिंह

सहायक प्राध्यापक, आनन्द मोहन कॉलेज

'लोक संस्कृति' किसी भी समाज का वह अंग है जिसके माध्यम से उस समाज की परम्पराओं, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आचार-विचार, दैनिक क्रिया-कलाप तथा कला आदि के बारे में ज्ञात होता है। डॉ. विद्या चौहान के अनुसार- "लोक का अर्थ सरल, स्वाभाविक मानव समाज है। जिसकी भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं इसी को हम लोक संस्कृति भी कह सकते हैं।" कहने का तात्पर्य है कि लोक और संस्कृति को अलग-अलग करके नहीं आँका जा सकता। प्रत्येक मनुष्य जन्म से ही लोकजीवन तथा संस्कृति से जुड़ा रहता है। वह अपनी रीतियों, परम्पराओं और विश्वासों को लोक से ही ग्रहण करता है। मनुष्य की पूरी संस्कृति तथा उसके पूरे समाज के सांस्कृतिक विकास का स्रोत यह 'लोक' ही है। उसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। यह न केवल मनुष्य के परिवेश को बताता है, बल्कि सांस्कृतिक रूप से हो रहे उसके विकास का एहसास भी कराता है। रामधारी सिंह दिनकर ने भी अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में भी इस बारे में लिखा, "संस्कृति जिंदगी का एक तरीका है और वह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते हैं।" इस प्रकार किसी भी समाज की लोक संस्कृति का मुख्य आधार वहाँ की मौखिक परम्पराएँ एवं मानव की सामान्य क्रियाएँ होती हैं जिनमें समय के साथ-साथ परिवर्तन भी होता रहता है, लेकिन फिर भी मूल

रूप में लोक संस्कृति अपने परम्परागत रूप में स्थिर रहती है। हमारा भारतीय समाज भी एक ऐसा समाज है जिसमें अनेकानेक वर्णों, कबीलों, समूहों, जातियोए तथा सम्प्रदायों का समावेश है। इसलिए इस समाज में दन्त कथाओं, किवदंतियों, पौराणिक गाथाओं, लोक कथाओं, रूढ़िवादी विश्वासों एवं मान्यताओं की कभी नहीं है लेकिन फिर भी भारतीय संस्कृति की विशेषता यही है कि क्षेत्रीय एवं साम्प्रदायिक स्तर पर इतनी विभिन्नताओं के बावजूद भी भारतीय संस्कृति की अपनी विशिष्ट छवि विभिन्न वर्गों की लोक कलाओं, लोकगीतों, लोक नृत्य, लोक वार्ताओं, लोक गाथाओं आदि में हर परिवेश में निरन्तर झलकती रही है। जो भारतीय संस्कृति को वर्तमान से भविष्य की ओर ले जाने में विशिष्ट भूमिका निभा रही हैं।

हालाँकि हमारा भारतवर्ष विभिन्न सांस्कृतियों का समूह कहा जाता है जिसमें विभिन्न वर्गों की लोक कलाओं, लोकगीतों, लोक नृत्य, लोक परम्पराओं का मिश्रण देखने को मिलता है किन्तु जहाँ तक पश्चिम बंगाल क्षेत्र की लोक संस्कृति की बात है तो हम कह सकते हैं कि लोक संस्कृति के मामले में यह राज्य हमेशा सम्पन्न रहा है। जिसने अपनी संस्कृति को पारम्परिकता के साथ ही आधुनिकता के साथ भी जोड़े रखा; जिसका इतिहास भी साक्षी रहा है। यहाँ समय-समय पर हुए राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक आदि परिवर्तनों ने यहाँ की लोक संस्कृति को विविध रूपों में समृद्ध किया। हम यहाँ के खान-पान, रीति-रिवाज, रहन-सहन, शिल्प एवं कला,

त्यौहार, अनुष्ठान, भाषा बोली आदि संस्कृति के किसी भी क्षेत्र को उठाकर देखे, यह अपने में ही विशिष्ट एवं व्यापक जान पड़ती है।

यहाँ का प्रत्येक नागरिक अपनी लोक संस्कृति से हृदय से जुड़ा है। साहित्य, कला, संगीत, रंगमंच (नाटक) के रूप में इस क्षेत्र ने एक तरह से भारतीय संस्कृति की विशाल परम्परा का ही संरक्षण किया है। उदाहरणस्वरूप- चैतन्य महाप्रभु ने जहाँ एक ओर हिन्दू धर्म के भावात्मक रूप को नृत्य एवं संगीत के माध्यम से उजागर किया, वही रवीन्द्रनाथ टैगोर जैसे महान साहित्यकार तथा विवेकानन्द जैसे विद्वान ने पूरे विश्व में भारतीय संस्कृति का परचम लहराया। इतना ही नहीं रंगमंच के क्षेत्र में भी यह काफी प्रसिद्ध रहा है। 'जात्रा' पौराणिक व ऐतिहासिक विषयों पर केन्द्रित यहाँ के खुले रंगमंच पर होने वाला ऐसा ही एक पारम्परिक संस्कृतिक कार्यक्रम है। इसी प्रकार 'कथाकाता' धार्मिक लोकगीतों पर आधारित एक ग्रामीण मनोरंजन का एक पारम्परिक रूप है। इतना ही नहीं लोक नृत्य, संगीत, चित्रकारी आदि के क्षेत्र में भी पश्चिम बंगाल आज भी उन्नत है। यहाँ के लोक नृत्यों के रूप जैसे- छाऊ नृत्य, गम्भिरा नृत्य, कृषाण नृत्य, कीर्तन नृत्य, अल्काप नृत्य आदि अपनी खुबसूरती एवं उत्साह के लिए जाने जाते हैं। यहाँ का संगीत भी पारम्परिक रूप में न होकर भक्ति एवं सांस्कृतिक गीतों के रूप में मिलता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर द्वारा लिखा गया 'रवीन्द्र संगीत' यहाँ की संस्कृति की अमूल्य धरोहर है, जो भारतीय शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ पारम्परिक लोकगीतों के रूप में विविध अवसरों पर गाया जाता है। लोकजीवन एवं लोक संस्कृति का केन्द्र होने के कारण रवीन्द्रनाथ जी द्वारा ही शान्तिनिकेतन में स्थापित विश्वभारती विश्वविद्यालय

भारतीय एवं अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के अध्ययन का विश्वप्रसिद्ध स्थल भी है।

पश्चिम बंगाल के पटचित्र भी यहाँ की लोक कला एवं संस्कृति के प्रतीक रहे हैं। यह पटचित्र कपड़े पर पटुआ एवं प्राकृतिक रंगों से सांस्कृतिक व देवी-देवताओं से संबंधित आकृतियाँ तथा दैनिक जीवन से जुड़ी घटनाएं बनाकर बनाये जाते हैं। पटचित्र कलाकार चित्रकारी करने के समय पाटेर गीत भी गाया करते हैं जो यहाँ के लोकगीत का एक रूप है। इसके साथ ही दृश्य कला के रूप में यहां ग्रामीण क्षेत्रों में मिट्टी की मूर्तियाँ, टेराकोटा ईंटों से बनी) की विभिन्न कृतियाँ एवं साज-सज्जा की वस्तुओं आदि का निर्माण भी लोक कला का ही अंग है। उत्सवप्रिय होने के कारण यहाँ के निवासी सभी व्रत-त्यौहार समान धार्मिक भावना एवं उत्साह के साथ मनाते हैं तथा त्यौहारों में अपनी परम्परा व संस्कृति को प्रदर्शित करने का भरपूर प्रयत्न करते हैं। जिसमें दुर्गापूजा प्रमुखता से मनाया जाता है। इसके अतिरिक्त काली पूजा, रंगोत्सव, बसंतोत्सव, दीपावली, लक्ष्मी पूजा, भाईदूज, रथयात्रा, गंगासागर मेला, केंदोली मेला, जालपेश मेला, राश मेला, पौष मेला आदि आयोजित होने वाले लौकिक उत्सव व त्यौहार हैं। इतना ही नहीं कई महान व्यक्तियों की जन्मस्थली होने के कारण उनकी जयंतियाँ भी मनायी जाती हैं जैसे- रामकृष्ण परमहंस जयंती, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जयंती, रवीन्द्र जयंती आदि। खान-पान की दृष्टि से भी यहाँ के लोग अधिकांशतः मांसाहारी हैं, तथा उनका प्रमुख भोजन मछली एवं उबले चावल है। हिल्सा अर्थात् इलिश मछली यहां काफी लोकप्रिय है। इसके साथ ही बंगाल के लोग मिठाईयों के भी काफी शौकीन होते हैं, यहां की पारम्परिक रसगुल्ला व संदेश आदि मिठाईयां पूरे देश में भी प्रसिद्ध हैं। इस

प्रकार पश्चिम बंगाल निश्चित रूप से भारत की विभिन्न सांस्कृतियों का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है जिसमें विभिन्न लोक कलां, लोकगीत, लोक नृत्य, लोक परम्पराओं की सुदृढ़ परम्परा देखने को मिलती है।

निःसन्देह लोक संस्कृति किसी भी देश, समाज अथवा जाति की आत्मा होती है। यह अपने भीतर लोक के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, धर्म, निष्ठा आदि को संजोए होती है। प्रो. मैनेजर पान्डेय के अनुसार- “संस्कृति मनुष्य की रचना है। वह मनुष्य की मनुष्यता और सामाजिकता की अभिव्यक्ति है उसके रूप से मनुष्य का श्रम और सृजन मूर्तिमान होता है।”³ किसी भी अंचल में रहने वाले जनसमुदाय के विश्वास, खान-पान, संस्कार, रहन-सहन, शिल्प एवं कलाएँ, त्यौहार, अनुष्ठान, रीति-रिवाज आदि मिलकर लोक-संस्कृति का समन्वित रूप बनाते हैं। वास्तव में लोक-संस्कृति लोक जीवन की संस्कृति

होती है जो मानव जीवन को जीवन्तता प्रदान करती है। लोक संस्कृति के संबंध में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि- “लोक शब्द का अर्थ केवल ग्राम से ही नहीं, नगरों, ग्रामों में फैली सम्पूर्ण उस जनता से निकलता है।”⁴ इसी कारण हमारी भारतीय संस्कृति विभिन्न क्षेत्रों की लोक संस्कृतियों से मिलकर उत्कृष्ट हो पायी है।

संदर्भग्रन्थ -

- 1 विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ०-41
- 2 रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ०-643
- 3 प्रो० मैनेजर पान्डेय, समेकित निबंध पृ०-208
- 4 भोलानाथ तिवारी, भाषा और संस्कृति, पृ०-30

पितृसत्ता: अर्थ, उत्पत्ति एवं व्यापकता

पूजा मिश्रा

अतिथि प्राध्यापक, आनन्द मोहन कॉलेज

भूमिका:

पितृसत्ता अंग्रेजी के शब्द 'पैट्रिआर्की' का हिंदी अनुवाद है तथा 'पैटर' और 'आर्के' शब्दों से मिल कर बना है अर्थात् 'पिता का शासन'। पितृसत्ता एक सामाजिक व्यवस्था है जिसमें परिवार की संपूर्ण बागडोर घर के वृद्ध अथवा प्रभावशाली पुरुष के हाथ में होती है। परिवार में वंश पिता के पूर्वजों के अनुसार चलता है। ऐसी पारिवारिक व्यवस्था में सत्ता का हस्तान्तरण पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक पुरुष से दूसरे पुरुष के हाथों होता रहता है। भारत ही नहीं वरन विश्व के अधिकांश भागों में पितृसत्तात्मक व्यवस्था का ही अनुसरण किया जाता है। स्त्रीवादी विशेषज्ञों ने स्त्री की सामाजिक दोगम स्थिति का मूलभूत कारण पितृसत्ता को ही घोषित किया है। केट मिलेट ने अपनी पुस्तक 'सेक्सुअल पॉलिटिक्स' में स्त्री के ऊपर पुरुष वर्चस्व की स्थिति के लिए 'पितृसत्ता' शब्द का प्रयोग किया था। विभिन्न स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा पितृसत्ता व्यवस्था की व्याख्या की गई है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री सिल्विया वाल्बे के अनुसार "पितृसत्ता सामाजिक संरचना की एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें पुरुष महिला पर अपना प्रभुत्व जमाता है, उसका दमन करता है और शोषण करता है।" स्त्रीविमर्श के विभिन्न संप्रदायों में से एक 'उग्र स्त्रीवाद' पितृसत्ता की जिस प्रकार से व्याख्या करता है, वह अनेक स्त्रीवादी विद्वानों को संतुष्ट नहीं करती है। 'उग्र स्त्रीवाद' स्त्रियों की प्रजनन क्षमता को उसकी अधीनता के मुख्य कारकों में गिनता है। 'उग्र स्त्रीवाद' यह मानता है कि यदि स्त्री प्रजनन की अनिवार्यता को हटा दिया जाए तो पुरुषों पर

निर्भर रहने की उनकी विवशता स्वतः ही समाप्त हो जाएगी। शुल्मिथ फायरस्टोन अपनी पुस्तक 'द डायलेक्टिक ऑफ सेक्स' द्वारा इसी विचारधारा का समर्थन करती हैं परंतु अन्य स्त्रीवादी विद्वान मानते हैं कि हमारा समाज जाति, जेंडर, नस्ल, वर्ग और धर्म इत्यादि के आधार पर बंटा हुआ है अतः पितृसत्ता के अनुभव प्रत्येक स्त्री के लिए एक से ही नहीं है। उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है कि निम्न जातियों की स्त्री का शोषण मात्र पितृसत्ता ही नहीं वरन जाति व्यवस्था द्वारा भी किया जाता है। वह पुरुषों की अधीनता के साथ ही उच्च वर्ग की स्त्रियों द्वारा भी शोषण का शिकार होती है। इसी प्रकार निम्न जाति के पुरुष भी उच्च जाति की स्त्रियों द्वारा शोषित होते हैं। तात्पर्य यह है कि अन्य स्त्रीवादियों ने उग्र स्त्रीवादियों के पितृसत्ता संबंधी विचारों पर अपना मत रखते हुए कहा कि सामाजिक संरचना एक जटिल संरचना है और इसका विभाजन मात्र स्त्री और पुरुष को दो भिन्न खेमों में रख कर नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार 'बैरेट' और 'शीला रोबोथम' जैसे स्त्रीवादी विद्वान पितृसत्ता की अवधारणा को अनुपयोगी करार देते हैं। इस संदर्भ में सिल्विया वाल्बी कहती हैं कि, "इस सिद्धांत को अनुपयोगी मानने की अपेक्षा इसे एक संकल्पना और सिद्धांत के रूप में इस तरह से विकसित किया जा सकता है कि स्त्री अधीनता की देश, काल, जाति, नस्ल, वर्ग तथा धर्म इत्यादि पर आधारित भिन्नताएं नजरअंदाज ना होने पाएं।"।

इस प्रकार पितृसत्ता को लेकर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं परंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि पितृसत्ता एक

व्यवस्था है, पितृसत्ता एक मानसिकता है। यह जरूरी नहीं है कि सभी पुरुष पितृसत्तात्मक मानसिकता का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। बहुत सारी स्त्रियाँ भी पुरुषवादी सोच का प्रतिनिधित्व करती हैं। पितृसत्ता, सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण अंग कैसे बनी या पितृसत्ता कब से विद्यमान है इस संबंध में विभिन्न मत हैं। पितृसत्ता के पक्षधर इसे मानव सभ्यता का एक स्वाभाविक अंग मानते हुए इसे सार्वभौमिक और सार्वकालिक घोषित करते हैं परंतु इस संबंध में हुए गहन शोध के उपरांत विभिन्न इतिहासकारों, स्त्रीवादी विद्वानों तथा मानव विज्ञानियों इत्यादि द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि पितृसत्ता, मानव सभ्यता के विकास का एक स्वाभाविक अंग न होने के साथ ही सार्वभौमिक और सार्वकालिक भी नहीं है। “समाज और संस्कृति निर्माण की प्रक्रिया में महिलाएं सदैव ही केंद्रीय भूमिका में रही हैं न कि हाशिए पर।”ⁱⁱⁱ

पितृसत्ता उत्पत्ति संबंधी मत:

पितृसत्ता की सार्वभौमिकता और सार्वकालिकता के संबंध में धार्मिक तर्क दिए जाते हैं जिनके अनुसार संपूर्ण विश्व का निर्माण ईश्वर द्वारा किया गया है और ईश्वर द्वारा ही स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग भूमिकाओं का निर्धारण किया गया है। स्त्री का जन्म धर सँभालने और बच्चों की देखभाल करने के लिए ही हुआ है। आज भी इन धार्मिक तर्कों पर विश्वास रखने वाले परिवार का वंश आगे बढ़ाने के लिए पुत्र जन्म अनिवार्य मानते हैं। पुत्रवधुओं को पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया जाता है। पितृसत्ता के पक्षधरों द्वारा पितृसत्ता की सार्वभौमिकता के लिए ‘शिकारी पुरुष’ का तर्क दिया जाता है। मानव विज्ञानी शेरवुड वाशबर्न और सी. लैंकैस्टर ने पितृसत्ता के संबंध में डार्विन के उद्विकास सिद्धांत

(थ्योरी ऑफ इवोल्यूशन) के आधार पर ‘शिकारी पुरुष’ का तर्क प्रस्तुत किया। यह तर्क डार्विन की कृतियों ‘ओरिजिन ऑफ़ स्पेशीज’ और ‘द डिस्टेंट ऑफ़ मैन’ में उद्धृत मानव विकास की लंबी शृंखला पर आधारित है। इस अवधारणा के अनुसार आदिम समाज में पुरुष शिकार पर जाया करते थे और स्त्रियाँ घर पर बच्चों की देखभाल करती थीं तथा भोजन की व्यवस्था करती थीं। ‘शिकारी पुरुष’ का तर्क पुरुष को स्त्री के आश्रयदाता के रूप में स्वीकार करता है। मानव विज्ञानी सैली स्लोकम ‘शिकारी पुरुष’ की अवधारणा को मानवशास्त्रियों की पुरुषवादी दृष्टि की उपज बताती है।^{iv} वह शिकारी पुरुष की अपेक्षा स्त्री और पुरुष दोनों को ही आहारसंग्रहकर्ता की भूमिका में देखती हैं। स्लोकम मानती हैं कि यदि पुरुष शिकार पर जाते थे तो इस समय को स्त्रियों ने बच्चों के पालन-पोषण के साथ ही कुछ रचनात्मक गतिविधियों में लगाया होगा यथा कंदमूल एकत्र करना और आरंभिक काल की कृषि की ओर अग्रसर होना। इतिहासकार गर्डा लर्नर भी मानती हैं कि आदिम समाज, भोजन के लिए पुरुषों द्वारा जुटाए गए बड़े शिकारों की अपेक्षा स्त्रियों द्वारा जुटाए गए छोटे शिकारों तथा कंदमूल पर अधिक निर्भर था।^v इस प्रकार के तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि शिकार संग्रह अवस्था में भले ही स्त्री और पुरुष के बीच श्रम विभाजन रहा हो परंतु आदिम समाज में पुरुष, स्त्री के आश्रयदाता की अपेक्षा उसके पूरक के रूप में देखे जाते थे। भारतीय इतिहासकार उमा चक्रवर्ती ने मध्य भारत की भीमबेटका की गुफाओं के भित्तिचित्र का उदाहरण दिया है। इन भित्तिचित्रों में स्त्रियाँ एक साथ विभिन्न भूमिकाओं में नजर आती हैं। स्त्रियों के हाथ में फल-फूल बटोरने की टोकरी के साथ मछली पकड़ने का जाल भी नजर आता है। इन भित्तिचित्रों से यह स्पष्ट

होता है कि स्त्रियाँ माँ होने के साथ ही आहार संग्रहकर्ता की भूमिका भी निभाती थीं।^{vi} पितृसत्ता के पक्षधरों में नाम जीव-विज्ञानी ई.ओ. विल्सन का भी आता है। विल्सन, स्त्री और पुरुष के बीच की असमानता को उचित ठहराने के लिए डार्विन के प्राकृतिक चयन के सिद्धांत का सहारा लेते हैं। विल्सन का मत है कि जिस समूह में मादाएं बच्चों को पालने पोसने का काम करती हैं और नर भोजन जुटाने का काम करते हैं वह समूह विकास की राह पर आगे निकल आता है।^{vii} इतिहासकार गर्डा लर्नर, विल्सन के इस मत का खंडन करती हैं कि आज के आधुनिक समाज में जहाँ बच्चों का पालन-पोषण मात्र माँ पर ही निर्भर नहीं करता है तथा जहाँ स्त्रियाँ भी बाहर जाकर आत्मनिर्भर बन रही हैं वहाँ इस तरह की धारणा निर्मूल हो जाती है। लर्नर, प्राचीन और आधुनिक समाज दोनों में ही ऐसे कबीलों का उदाहरण देती हैं जहाँ शिशु के पालन-पोषण का दायित्व कबीले के वृद्ध पुरुष, युवक अथवा अपेक्षाकृत बड़े बच्चे निभाते हैं। नारीवादी आलोचकों द्वारा भी विल्सन के इस मत को अप्रमाणिक एवं अवैज्ञानिक घोषित किया गया है। पितृसत्ता की उत्पत्ति उसकी सार्वभौमिकता तथा सार्वकालिकता को लेकर उसे सामाजिक व्यवस्था का एक स्वाभाविक अंग घोषित करने वाले विद्वानों की स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा कड़ी आलोचना की गई है। गर्डा लर्नर ने अपनी पुस्तक 'क्रिएशन ऑफ पैट्रीआर्की' में लिखती हैं कि, "पितृसत्ता की स्थापना को मात्र किसी एक घटना से जोड़ कर नहीं देखा जाना चाहिए। बल्कि इसे एक प्रक्रिया की भांति समझा जा सकता है जिसे बनने में लगभग 2500 वर्ष (3100 से 600 ईसा पूर्व) लगे हैं।"^{viii} गर्डा लर्नर से पूर्व यह मत फ्रेडरिक एंगल्स द्वारा भी दिया जा चुका है कि पितृसत्ता का निर्माण

एतिहासिक घटनाक्रमों में कुछ निश्चित कारणों से हुआ है। फ्रेडरिक एंगल्स ने 1884 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'परिवार, निजी संपत्ति और राज्यों की उत्पत्ति' में स्त्री पराधीनता के मुख्य कारकों के संबंध में विस्तार से चर्चा की है। एंगल्स ने अपनी इस पुस्तक द्वारा परिवार के इतिहास को समझाने के लिए 1861 में प्रकाशित बखोफेन की पुस्तक 'मदर राईट' तथा 1870 में प्रकाशित हेनरी मार्गन की पुस्तक 'प्राचीन समाज' की सहायता है। पितृसत्ता पारिवारिक संरचना से जुड़ा हुआ शब्द है अतः पितृसत्ता की व्याख्या के लिए एंगल्स आदिम समाज में पारिवारिक संरचना की व्याख्या करते हैं। एंगल्स के अनुसार 1861 में बखोफेन की पुस्तक के प्रकाशन के बाद से परिवार के इतिहास का अध्ययन आरंभ हुआ। बखोफेन की पुस्तक मूलरूप से जर्मन में 'Das Mutterrecht' के नाम से लिखी गई थी जिसमें 'मातृ अधिकार' नाम से एक अध्याय है। यह पुस्तक आदिम सामाजिक व्यवस्था के कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर प्रकाश डालती है। बखोफेन के अनुसार आदिम समाज 'यौन स्वच्छंदता' या हैटेरिज्म की स्थिति में था जिसमें एक स्त्री के विभिन्न पुरुषों से संबंध होते थे। इस अवस्था में किसी नवजात शिशु के पिता का निर्धारण नहीं किया जा सकता था। अतः शिशुओं की पहचान माँ द्वारा ही होती थी और वंश भी मातृ पूर्वजों के नाम से ही चलता था। बखोफेन के अनुसार यह वह समय था जब स्त्रियों को समाज में बहुत सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। बखोफेन के मातृ अधिकार की अवधारणा से ही मातृसत्ता की अवधारणा विकसित होती है। बखोफेन हैटेरिज्म से एकनिष्ठ विवाह में परिवर्तन और मातृसत्ता से पितृसत्ता में परिवर्तन के पीछे यूनानी सभ्यता में हुए धार्मिक परिवर्तनों का आधार देते हैं। इसके लिए उन्होंने इस्खलिस के

नाटक 'ओरेस्टिया' की नई व्याख्या दी। इस नाटक के अनुसार 'ओरेस्टस' को अपनी माता 'क्लिटेमिस्ट्रा' की हत्या के आरोप से बरी कराने के लिए देवता अपोलो तथा देवी ऐथना ओरेस्टम का साथ देते हैं। बखोफेन रोमन सभ्यता में आए इस पौराणिक बदलाव को ही मातृसत्ता के विनाश का आरंभ मानते हैं। "बखोफेन द्वारा प्रस्तुत आदिम समाज में उपस्थित मातृसत्ता की अवधारणा से बीसवीं सदी के अधिकांश नारीवादी विचारक सहमत हैं। फ्रेडरिक एंगल्स, चार्लोट पार्किंसन, गिलमैन तथा एलिजाबेथ कैंडी स्टैटन इत्यादि विचारकों ने बखोफेन की अवधारणा के अनुसार स्त्री-पराधीनता पर अपने मत प्रस्तुत किए हैं।"^x फ्रेडरिक एंगल्स निजी संपत्ति के आविर्भाव को मातृसत्ता के विनाश का कारण मानते हैं। एंगल्स ने परिवार शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा कि परिवार या फेमिली शब्द फेम्युलस (famulus) शब्द से बना है जहाँ फेम्युलस शब्द का अर्थ 'घरेलु दास' होता है। फेमेलिया शब्द का अर्थ एक व्यक्ति के सारे दासों का समूह होता है। रोमन लोगों द्वारा निर्मित इस सामाजिक संगठन फेमेलिया में उसके मुखिया के अधीन उसकी पत्नी, उसके बच्चे और कुछ दास होते थे। और रोमन पितृसत्ता के अंतर्गत उसके हाथों में इन लोगों की जिंदगी और मौत का अधिकार होता था। एंगल्स ने घर के मुखिया की निरंकुश सत्ता को इंगित करते हुए लिखा, "पत्नी के सतीत्व की रक्षा करने के लिए यानि बच्चों के पितृत्व की रक्षा करने के लिए नारी को पुरुष की निरंकुश सत्ता के अधीन बना दिया जाता है। वह यदि उसे मार भी डालता है तो वह अपने अधिकार का ही प्रयोग करता है।"^x फ्रेडरिक एंगल्स ने निजी संपत्ति की अवधारणा के साथ ही स्त्री अधीनता के लिए स्त्रियों की उत्पादन में भागेदारी न

होने को भी दोषी ठहराया। घरेलु श्रम के दायरे में सीमित हो जाने के कारण स्त्रियाँ सामाजिक उत्पादन के क्षेत्रों से दूर होती जाती हैं। एंगल्स मानते हैं कि, "अब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन के काम से अलग और केवल घर के कामों तक ही, जो निजी काम होते हैं, सीमित रखा जाएगा तब तक स्त्रियों का स्वतंत्रता प्राप्त करना और पुरुषों के साथ बराबरी का हक पाना असंभव है और असंभव ही बना रहेगा।"^{xi} परंतु एंगल्स के तर्कों की भी स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा आलोचना की गई। लर्नर ने यह स्पष्ट किया कि ऐसा नहीं है कि विश्व की हर संस्कृति में घरेलु कार्यों की जिम्मेदारी मात्र स्त्री की ही होती है। क्रिश हर्मन मानती हैं कि स्त्री के इन्हीं घरेलू कार्यों की जिम्मेदारी उठाने से ही कृषि का विकास हुआ। स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा एंगल्स की इसलिए भी आलोचना की गई क्यों कि उन्होंने मातृसत्ता और मातृवंशीयता को एक दूसरे का पर्याय समझा। इसके अतिरिक्त एंगल्स की निजी संपत्ति के आविर्भाव से स्त्री अधीनता के पथ पर अग्रसर हुई इस तथ्य को प्रायः सभी स्त्रीवादी विद्वानों द्वारा गलत साबित किया गया जिसमें मुख्यतः संरचनावादी मानवविज्ञानी क्लाउड मेलेसा, इतिहासकार गर्डा लर्नर तथा मानव विज्ञानी पीटर आबी प्रमुख हैं। इस प्रकार "आधुनिक मानवविज्ञानियों द्वारा बखोफेन और एंगल्स की आदिम समाज में मातृसत्ता के अस्तित्व की अवधारणा को निरस्त किया गया है। आधुनिक मानवविज्ञानी 'मातृसत्ता' की अपेक्षा 'मातृस्थानिकता' तथा 'मातृवंशीयता' शब्द को अधिक उपयुक्त मानते हैं।"^{xii} गर्डा लर्नर लिखती हैं कि, "मैं मातृसत्ता को पितृसत्ता के विलोम के रूप में परिभाषित कर सकती हूँ और इस परिभाषा के अनुसार मैं निष्कर्षतः यह कह सकती हूँ कि मातृसत्तात्मक समाज कभी भी

अस्तित्व में नहीं रहे हैं।^{xiii} लर्नर की इस पुष्टि के साथ ही यह भी तथ्यात्मक सत्य है कि भारत में केरल के नायर संप्रदाय और पूर्वोत्तर भारत के गारो, खासी और जयंतिया समुदाय में 'मातृस्थानिकता' और 'मातृवंशीयता' के साथ ही 'मातृसत्तात्मक व्यवस्था' का प्रभाव भी देखा जा सकता है। गर्डी लर्नर ने अपनी पुस्तक 'क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की' में पितृसत्ता के विविध पक्षों पर गंभीर विचार किया है। लर्नर का मानना है कि पितृसत्ता को एक घटना के रूप में नहीं वरन प्रक्रिया के रूप में देखने की आवश्यकता है। पितृसत्ता उत्पन्न नहीं हुई वरन मानव सभ्यता के विकास के पथ पर ग्रसर होने के साथ क्रमशः निर्मित होती चली आई है। इसके पीछे किसी एक कारक की भूमिका न होकर विविध कारकों का हाथ है। लर्नर यह नहीं मानती कि पितृसत्ता एक सोची समझी साजिश का परिणाम है। लर्नर कहती हैं कि स्त्री-पुरुष के बीच का श्रम विभाजन आगे के वर्षों में स्त्री को अधीनता के पथ पर अग्रसर कर देगा इसका स्त्रियों को जरा सा भी भान नहीं था। 'सेपियंस' पुस्तक के लेखक युवाल नोआह हरारी मानते हैं कि स्त्री और पुरुष को दो भिन्न-भिन्न खेमों में बाँटना यह ज्यादा कुछ सांस्कृतिक और काल्पनिक सत्य पर निर्भर करता है न कि जैव वैज्ञानिक सत्य पर। स्त्रीत्व और पुरुषत्व सामाजिक भिन्नताओं के साथ बदलता रहता है। किसी जीव के सेक्स का निर्धारण जीव विज्ञान के आधार पर किया जाता है किन्तु जेंडर या लिंग का निर्धारण सांस्कृतिक आधार पर किया जाता है। हरारी मानते हैं कि मानव विकास की प्रक्रिया में लगभग सभी समाज कृषि क्रांति के बाद से पितृसत्तात्मक ही रहे हैं। हरारी स्पष्ट रूप से कहते हैं कि "पितृसत्तात्मक व्यवस्था जैववैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित न होकर मिथकों पर आधारित है।"^{xiv}

संरचनावादी मानवविज्ञानी क्लाउड लेवी स्त्रास संस्कृति के निर्माण के लिए स्त्री-पराधीनता की आवश्यकता पर पर एक सैद्धांतिक व्याख्या देते हैं। "स्त्रास के अनुसार आदिम और खानाबदोश जनजातियों में स्त्रियों की अदला-बदली ही स्त्री-पराधीनता का मूल है।"^{xv} शेरी ऑटनर ने पितृसत्तात्मक व्यवस्था की उत्पत्ति और स्त्री पराधीनता पर अपना मत प्रस्तुत करते हुए 1974 के एक निबंध में लिखा था कि "अभी तक के सभी ज्ञात आदिम समाज में स्त्रियों का संबंध संस्कृति की अपेक्षा प्रकृति से ज्यादा प्रगाढ़ रहा है। लगभग प्रत्येक समाज एवं संस्कृति में मानव द्वारा विकास पथ पर अग्रसर होने में प्रकृति की उपेक्षा की गई है। जिसका सीधा असर स्त्रियों पर भी पड़ा है।"^{xvi}

इस प्रकार स्त्री-पराधीनता के मूल तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की उत्पत्ति के संबंध में विभिन्न मत हैं। जिनका एक संक्षिप्त विवरण यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

पितृसत्ता: व्यापकता

जब से स्त्री विमर्श के विद्वानों द्वारा स्त्री की दायम स्थिति और उसके अधीनता के कारकों के रूप में पितृसत्ता को परिभाषित किया गया है तब से यदि देखा जाए तो पितृसत्ता की व्यापकता हमें जीवन के हर मोड़ पर दिखाई देगी। "स्त्री का अपना होना और उस होने की प्रक्रिया की सारी अर्थवत्ता अब तक पितृसत्ता निर्धारित करती आई है। चूँकि कोई 'दूसरा' यानी पुरुष जाति उसका निर्धारण करती है इसलिए स्त्री की अपनी स्वायत्तता नहीं रहती। उसका वस्तुकरण हो जाता है। स्त्री के संदर्भ में यह एक ऐतिहासिक सच है।"^{xvii} विश्व की प्रत्येक संस्कृति में इस सत्ता के पोषकों द्वारा स्त्रियों को हमेशा दब कर रहने की हिदायत दी जाती। धार्मिक रूप से भी इस सत्ता का सदैव समर्थन किया गया है। भारतीय

धर्मशास्त्र की आधारशिला कही जाने वाली मनुस्मृति में पतिसेवा को ही स्त्रियों के अग्निहोत्र कर्म के तुल्य बताया गया है।^{xviii} पति यदि सदाचारहीन, कामी या विधादि गुणों से हीन भी हो तो वह पूज्य है।^{xix} मुस्लिम धर्म ग्रंथ 'सुरा बकारा' की आयत 223 में स्त्री को उसके पति द्वारा चरने के लिए तैयार अनाज का खेत कहा गया है।^{xx} यह पितृसत्ता की व्यापकता ही है कि स्त्री चेतना के शुरुआती दौर में स्त्रियों को अपने मौलिक नागरिक अधिकारों के लिए भी संघर्ष करना पड़ा। चाहे वह वोट देने का अधिकार हो, चाहे वह संपत्ति में हिस्से का अधिकार हो या फिर तलाक लेने का अधिकार हो। 1929 में अपनी पुस्तक 'ए रूम ऑफ वंस ओन' में वर्जीनिया वुल्फ इस दोगम स्थिति के संदर्भ में एक प्रश्न पूछती हैं कि यदि शेक्सपियर की कोई बहन होती तो क्या उसे भी अपने कौशल को विकसित करने के वही समान अवसर मिलते जो शेक्सपियर को मिले थे? ^{xxi} स्त्री शिक्षा के सीमित अवसरों और संसाधनों की ओर इंगित करते हुए वर्जीनिया लिखती हैं कि, "आप (पितृसत्तात्मक समाज) चाहें तो अपने पुस्तकालयों पर ताला सकते हैं। पर कोई दरवाजा, कोई ताला ऐसा नहीं है जिससे आप मेरी मानसिक स्वतंत्रता को अवरुद्ध कर सकें।"^{xxii} वर्जीनिया वुल्फ के प्रश्न और कथन तब और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं जब स्वयं वर्जीनिया और उनकी बहन की शिक्षा-दीक्षा घर में ही संपन्न हुई जबकि उनके भाइयों को प्रतिष्ठित कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ने का अवसर मिला। सीमंतनी उपदेश की अज्ञात लेखिका 1882 में स्त्री-पुरुष की तुलना करते हुए महिलाओं पर थोपे गए धार्मिक पाखंडों, रीति-रिवाजों पर प्रश्न उठाती हैं।^{xxiii} बीसवीं सदी के शुरुआती दौर में महादेवी वर्मा अपने निबंधों के संग्रह 'शृंखला की कड़ियाँ' में स्त्रियों के मूल नागरिक अधिकारों की मांग

करते हुए लिखती हैं कि "हमें न किसी पर जय चाहिए, न किसी से पराजय, न किसी पर प्रभुता चाहिए, न किसी का प्रभुत्व। केवल अपना वह स्थान, वे स्वत्व चाहिए जिनका पुरुषों के निकट कोई उपयोग नहीं है, परंतु जिनके बिना हम समाज का उपयोगी अंग बन नहीं सकेंगी। हमारी जागृत और साधन संपन्न बहनें इस दिशा में विशेष महत्वपूर्ण कार्य कर सकेंगी इसमें संदेह नहीं।"^{xxiv} स्त्री चेतना के फलस्वरूप स्त्री की सामाजिक दोगम स्थिति के विरोध में विभिन्न प्रयास किए जा रहे हैं। लिंग समानता के पुरजोर प्रयास किए जा रहे हैं परंतु इन लक्ष्यों में सबसे बड़ी बाधा पितृसत्तात्मक व्यवस्था की व्यापकता ही है। आज स्त्रियों के विरुद्ध होने वाले अधिकांश अपराधों के मूल में पितृसत्तात्मक व्यवस्था की वह मानसिकता ही है जो विभिन्न अपराधों द्वारा पुरुषों की स्त्रियों पर श्रेष्ठता साबित करना चाहती है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि पितृसत्ता पर हुए गहन अध्ययन के उपरान्त इसे सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक कहना उचित नहीं है और न ही इसे मानव सभ्यता के विकास का स्वाभाविक अंग समझना चाहिए। स्त्रीवादी विद्वानों ने मातृसत्ता के अस्तित्व को नकारने के साथ ही स्त्रियों के सदैव पराधीन रहने के तथ्य को भी नकारा है। स्त्रीवादी दृष्टिकोण से पितृसत्तात्मक व्यवस्था की जांच-पड़ताल का मुख्य उद्देश्य लिंग-समानता की स्थापना तथा किसी भी लिंग विशेष के आधिपत्य से मुक्ति है। इस दिशा में यदि सकारात्मक प्रयास किए जाएँ तो निश्चित रूप से एक ऐसी व्यवस्था उभर कर आएगी जो मातृसत्तात्मक अथवा पितृसत्तात्मक होने की अपेक्षा मानव संभावनाओं के सभी द्वारों को सभी के लिए समान रूप से खुला रखेगी।

संदर्भ:

- ⁱ फरहत खान एवं डॉ. अरुणा सेठी द्वारा लिखित आलेख, भारत में लिंग असमानता, *Indian Streams Research Journal*
- ⁱⁱ विजय झा द्वारा लिखित आलेख, पितृसत्ता: विमर्श के भीतर, कथादेश, मार्च, पृ. सं.-64
- ⁱⁱⁱ लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, भूमिका
- ^{iv} सैली स्लोकम का आलेख, आहा संग्रहकर्ता की भूमिका में स्त्री: मानवशास्त्र की पुरुषवादी दृष्टि, अनुवाद-रंजना श्रीवास्तव, कथादेश, मार्च 2019, पृ. सं.-13
- ^v लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-22
- ^{vi} विजय झा द्वारा लिखित आलेख, पितृसत्ता: विमर्श के भीतर, कथादेश, मार्च, पृ. सं.-66
- ^{vii} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-19
- ^{viii} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, भूमिका
- ^{ix} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-26
- ^x एंगल्स फ्रेडरिक, परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ. सं.-73
- ^{xi} एंगल्स फ्रेडरिक, परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति, प्रगति प्रकाशन, मास्को, पृ. सं.-208
- ^{xii} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-29
- ^{xiii} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-31
- ^{xiv} यूवाल नोआह हरारी, सेपियंस, विंटेज प्रकाशन, लंदन, पृ. सं.-178
- ^{xv} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-24
- ^{xvi} लर्नर गर्डा, द क्रिएशन ऑफ पैट्रिआर्की, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयॉर्क, पृ. सं.-26
- ^{xvii} पितृसत्ता के नए रूप, संपादक: राजेंद्र यादव, प्रभा खेतान, अभय कुमार दूबे, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं.-16
- ^{xviii} मनुस्मृति, संपादक-पंडित हरिशंकर शास्त्री, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं.-38
- ^{xix} मनुस्मृति, संपादक-पंडित हरिशंकर शास्त्री, साक्षी प्रकाशन, दिल्ली, पृ. सं.-16
- ^{xx} अग्रवाल रोहिणी, साहित्य का स्त्री स्वर, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, पृ. सं.-08
- ^{xxi} वुल्फ वर्जीनिया, ए रूम ऑफ वंस ओन, फिंगर प्रिंट क्लासिक, (प्रकाश बुक्स इंडिया)
- ^{xxii} वुल्फ वर्जीनिया, ए रूम ऑफ वंस ओन, फिंगर प्रिंट क्लासिक, (प्रकाश बुक्स इंडिया), पृ. सं.-81
- ^{xxiii} सीमंतनी उपदेश, संपादक: डॉ. धर्मवीर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
- ^{xxiv} वर्मा महादेवी, शृंखला की कड़ियाँ, लोकभारती पेपरबैक्स, इलाहाबाद, पृ.सं.-23-24



The Symphony of Learning

Dr. Dipra Bhattacharya
(GB President)

Physics explores the universe,
forces in play,
Chemistry mixes elements
in a magical way.
Mathematics counts the numbers,
vast and wide,
Bio-science decodes life,
with nature as guide.
Economics tracks the flow
of wealth and trade,
Accountancy keeps balance,
profits made.
Commerce drives the market,
businesses grow,
English Literature helps
the soul to glow.
Bengali Literature weaves
stories old and true,
History unfolds the past
for me and you.
Geography maps the world
in all its grace,
Political Science shows the
power we embrace.
For the subjects still left,
so much more or learn,
Their lessons await,
their knowledge to earn.
So dear students,
with each subject you find,
Your mind will expand,
and wisdom unwind.

Closely Betray

Sohini Roy
Sem-3, English Major

She said we are close,
I believe we are close
She talks less I speak more...
But I thought that we are close.

I was too sweet to be her close one,
And she was little clever to pretend as close
one.
Yes I love her,
She loves me too but in a mature way;
Where there was no love after ignorance.

She was the sweetest knife,
I ever seen in my life,
But my rest of life is on my track.
After being betrayed by my dear she.

In beginning she gave me solution,
She makes me stand on that solution,
She made me believe, she was the dearest one;
But after standing on her solution,
She made me cry in front of my reflection,
And she was not anywhere !

She was enjoying her life,
I am happy for her.
But there is a word comes "but"
Where are you ? You said and I believe we were
the closest one

At last I lost everyone.
Going to lost myself too
But I took a promise from myself;
She betrayed but I don't,
There is always a rainbow after a
thunderstorm

The Legacy of Ananda Mohan College

Supriyo Saha
Sem-1, Physiology Major

In the heart of the city, a college stood tall,
Ananda Mohan, a name that echoed through all,
A place of learning, where minds grew bright,
A beacon of hope, in the dark of night.

Founded by a visionary, with a dream in his eyes,
To educate and empower, the young and wise,
Ananda Mohan College, a legacy began,
A journey of knowledge, for the heart and hand.

Through corridors of time, generations passed,
Students learned, grew, and forever last,
In classrooms, labs, and libraries, they found,
The tools to shape their futures, and make their marks profound.

Professors guided, with expertise and care,
Mentoring minds, and helping them share,
Their passions, ideas, and creativity,
In a nurturing environment, where they could be free.

From science to arts, and every field in between,
Ananda Mohan College, a holistic education was seen,
Preparing students, for life's challenges ahead,
And inspiring them, to make a positive impact, instead.

Years went by, and the college grew,
A reputation built, for excellence a new,
Alumni succeeded, in their back, with grateful hearts.

Today, Ananda Mohan College stands proud,
A testament to the power of education allowed,
A legacy of learning, that continues to thrive,
Inspiring generations, to strive and survive.

Growing Up

Rashi Chatterjee
Sem-1, English Major

Growing up is realising
Angels aren't real and so are not unicorns.
Stars don't grant wish, and Some dreams do get torn.
Like not everyone get their "happily ever after",
And life is not only about laughter.

From losing a toy as a child,
To losing people on the way.
The kid who was scared of dark,
Now looking for it even during day.
She calls it her comfort place.

Growing up is
Learning to balance joy and strife,
Facing the changing season of life.
Not the loss of innocence,
But finding light in life's defense.

Shine

Sohini Roy
Sem-3, English Major

All the stars shine bright at night
But there's a morning
Where all the stars get faded
But still one shines brightly in the sky.
At night when the moon is top of the sky
Seems like it shines....
But it reflects the shine of the brightest star
So, if it comes to shine
No one can stop you to shine
Maybe sometimes there will be a different
pattern of shine....
But you will shine all your life
Don't be afraid of the eclipse
Because after that there is a beautiful gleam...

An Essay on Equality

Dr. Dibyajyoti Ghosh
Assistant Professor of English

The idea of equality and equal rights has changed throughout the ages. Protesters have pointed out that rights deemed equal somehow or the other leave a gap through which some group or the other finds itself disenfranchised of some rights. As a brief survey of the most major documents proclaiming rights will show, the idea of equality keeps changing. What these documents do not claim is that inequality is a fact of life beginning from birth. Instead of explicitly trying to create a state of equality, which try as one might, can never be achieved 100%, a method of acknowledging inequality and then trying to ameliorate it by positive discrimination or affirmative action should be adopted, as it is in various countries across the world.

The earliest human writings are from roughly 5000 years back. The earliest human rights' documents are from the Mesopotamian civilisation from roughly 4000 years back. Thus, as long as people have written, people have roughly written about equality. Yet, history shows that there is always some other right to strive for. Among documents which have had a major impact on modern human rights' documents, one may mention England's 1215 *Magna Carta* which proclaimed: 'To no one will we sell, to no one will we refuse or delay, right or justice' (Clause 40). The 'one' in this line and in the document

referred to 'freemen', a term which excluded slaves and women.

The 1776 *Unanimous Declaration of the Thirteen United States of America* in its preamble stated 'We hold these truths to be self-evident, that all men [italicisation mine] are created equal'.

The 1789 French 'Declaration of the Rights of Man [italicisation mine] and of the Citizen' claimed 'Men [italicisation mine] are born and remain free and equal in rights. Social distinctions may be based only on considerations of the common good' (Article 1). This provoked Mary Wollstonecraft to write the 1792 *A Vindication of the Rights of Woman* signalling that the agitating group had left out half of the human population.

The 1948 United Nations *Universal Declaration of Human Rights* began: 'recognition of the inherent dignity and of the equal and inalienable rights of all members of the human family is the foundation of freedom, justice and peace in the world'.

The Indian constitution adopted on 26 January 1950 mentioned 'equality of status and opportunity'.

The 1848 *Communist Manifesto*, though not a document of human rights, recorded and 'the "dangerous class", [lumpenproletariat] the social scum, that passively rotting mass thrown off by the lowest layers of the old society, may, here

and there, be swept into the movement by a proletarian revolution; its conditions of life, however, prepare it far more for the part of a bribed tool of reactionary intrigue.' In other words, it drew attention to the fact that human rights' activists had not secured much rights for 'the "dangerous class", [lumpenproletariat] the social scum, that passively rotting mass'.

Ferdinand Lassalle, in 1862, said: 'The constitutional questions are in the first instance not questions of right but questions of might. The actual constitution of a country has its existence only in the actual condition of force which exists in the country: hence political constitutions have value and permanence only when they accurately express those conditions of forces which exist in practice within a society.' He also drew attention to the wide disparities between de jure rights and de facto rights.

In the 1936 B.R. Ambedkar versus MK Gandhi debates following the publication of Ambedkar's *Annihilation of Caste*, Ambedkar pointed out that 'the Mahatma says that the standards I have applied to test Hindus and Hinduism are too severe and that judged by those standards every known living faith will probably fail. The complaint that my standards are high may be true. But the question is not whether they are high or whether they are low. The question is whether they are the right standards to apply. A People and their Religion must be judged by social standards based on social ethics. No other standard would have any meaning if religion is held to be a necessary good

for the well-being of the people. Now I maintain that the standards I have applied to test Hindus and Hinduism are the most appropriate standards and that I know of none that are better. The conclusion that every known religion would fail if tested by my standards may be true. But this fact should not give the Mahatma as the champion of Hindus and Hinduism a ground for comfort any more than the existence of one madman should give comfort to another madman or the existence of one criminal should give comfort to another criminal.' Ambedkar's politics was instrumental in creating the positive discrimination system in electoral, educational and employment opportunities in the government sector in modern India.

The concept of positive discrimination or affirmative action acknowledges that unlike what the 1776 American Declaration or the 1789 French Declaration state, equality is not ensured at birth. People (men, women and intersex people) are born in a specific geography, in a specific family with some or no religious affiliation, some or no sub-community identifiers such as caste or tribal identity, speaking one or many languages (including non-vocal languages such as sign languages), having certain physical characteristics including the presence or absence of some senses or organs, with a set of neurological characteristics which may or may not be as diversely spread as in the rest of the population, and in a family with its own unique economic position. Thus, people are as far removed from equality at birth as is possible the stretch of

imagination. How to ensure the 1948 'equal rights' of the UN Declaration so as to achieve 'equality of status and opportunity' as envisaged in the Indian Constitution?

My readers must have read about some or all of these rights in their school history or civics or philosophy text books. As we grow older, we realise that equality or opportunity can never be ensured. The inequalities with which we are born at birth and the inequalities we accrue as we keep growing ensure that opportunities are never perfectly equal. Imagine two lines which are at just more than 0.1 degrees from each other. They make look similar and parallel but the longer one keeps drawing them, the more apparent it will be that the two are not parallel but are rather divergent.

Think of identical twins. Their genes may share a high degree of similarity but with some differences. However, as they keep growing older, their epigenes keep changing differently based on their different lifestyles. If we start off with an inequality, however small, over time, those inequalities will only increase.

Given that inequality exists, how best to make the world a fairer place for a larger section of the world's inhabitants? Positive discrimination is one way. In India, positive discrimination is geared towards providing better electoral, education and employment opportunities in the government sector for populations which may be subject to negative discrimination. The point is to increase income-generating abilities and to have a fairer share in legislation. However, once

income-generating abilities have been provided and the beneficiaries attain a level of income above the minimum wage, the positive discrimination system in education or employment for the descendants of those beneficiaries does not always end. Positive discrimination is not always linked with income (though in some cases, such as in the case of OBCs, it is). A move to introduce such a check is under debate in the judiciary and in the legislature. In the public education sector, an implicit check is already there in the form that even those who apply for positive discrimination in competitive entrance exams are denied that positive discrimination if their marks are already eligible for admission even without the added positive discrimination. Given that the government sector itself is only a minuscule portion (2%) of the employment sector and is increasingly overshadowed by the private sector in education, it is not the only forum for ensuring a fairer place for previously negatively discriminated against populations.

The recent changes in affirmative action in the USA present an interesting counterpoint. Beginning from the late 1980s onwards, Indian software engineers started to migrate in large numbers to the developed world, and a large portion of such professionals went to the next largest country by population size, the USA. Such professionals, one may argue, represented those who had managed to reach higher levels of education despite their challenges or because of their privileges over their compatriots. When

they reached the USA, their children, too, often tried to live up to the high academic standards of their parents and their fellow immigrants from India. (The USA national spelling bee competition is a good example of this trend. Whereas there were a few winners of Indian origin in the 1980s and the 1990s, there hasn't been a winner of any other ethnicity since 2008). Chinese students often also followed a similar trajectory but their comparatively lesser grasp of the English language left the field for people of Indian ethnicity to find better opportunities in the USA. The top-ranked universities in the world, many of which are in the USA, often found that their incoming students were roughly 50% of Asian ethnicity (given that India and China have 35% of the world's population and the other Asian countries have another 25%, it is not surprising). In order to ensure greater representation of other previously legally discriminated against populations such as Black and Latino, affirmative action in the USA set down limits for incoming students of certain ethnicities. This reduced the number of incoming students from Asian backgrounds, who went to court arguing that it was discriminatory against them. The court ruled in their favour for the time being in 2023. This case study highlighted several issues. One, that discrimination exists in several layers and is highly contextual. Thus, affirmative action should also take into account the existing status of the intended beneficiary and not go by historical precedent alone.

Other than through such positive discrimination, what are the other ways? One way perhaps is to acknowledge that inequality exists. The 1973 tennis match between Billie Jean King and a sexist Bobby Riggs, which was dubbed as one among many 'Battle of the Sexes' did little to address the core issue of gender inequality. In competitive sports where physical prowess is a factor, men and women compete separately. In sports such as wrestling, weight lifting and boxing, even for each sex, there are categories for a range of weights in order to ensure that physical strengths of the competitors are not vastly different. It bears to mention here that in several sports where physical prowess is a factor, hormonal and chromosomal factors often work against some people who identify as women. The standard response of sports bodies is to ban those sportspersons. Instead, these sports bodies could create sub-categories for women at the higher end of the weight scale or for men at the lower end of the weight scale or any such similar proposal to ensure greater participation but also be less unfair in the process.

This brings in the question of empathy. What is empathy? Empathy may be putting oneself in the proverbial shoes of another person to feel what that person feels. It is only when one acknowledges the other person as being as much worthy of respect as oneself can one be empathetic.

Inequality exists among men and women and intersex people, people of different religions, race, caste, geography,

class, language, physical ability, and intellectual ability. Rather than striving for equality of treatment which leads to not acknowledging the inequality and doing nothing by way of positive discrimination, one approach of dealing with inequality suggests first acknowledging inequality, then finding means of positive discrimination and finally developing the capacity to empathise with others, none of whom are our equal.

Returning to *de jure* and *de facto* rights and treatment of inequality, two factors become clear. Rights proportional to population is a path bestrewn with danger. In India, there is an ongoing political debate about rights proportional to caste populations. This ignores the logic that if one were to extend that to religion or language or any other aspect, it would be highly politically unpalatable. Thus, reducing inequality is not always best achieved through political means. Empathy lies at the core of reducing inequality. As the history of human writing tells us, empathy ebbs and flows and garners enough public support to achieve

some kind of reduction of inequality only at certain points of time in history. A host of factors allow that moment of radical change. *De jure* rights often lose their *de facto* prevalence owing to a loss of empathy. Human beings are not automata and are subject to emotions. As long as society exists, inequality will persist because of factors beyond the control of any system. The point is to continually strive to reduce inequality by allowing empathy to develop within us. Rights are not given, they are seized; but rights are maintained not by State control but rather by empathy. If one were to look at various societies across the world, one would realise that various kinds of empathy in different degrees exist in society going beyond juridical laws. The answer to inequality is within us, rather than out there in the world. How best to bring it about requires educating ourselves about empathy and learning to see the various inequalities that exist around us. Learning to know and learning to see are more important than political struggles.



Some of the oldest zoos in India

Dr. Pallab Ray

Assistant Professor, Department of Zoology

The Wildlife (Protection) Act, 1972 ('WPA') defines a zoo as an establishment where animals are kept for exhibition for the public but does not include a licensed dealer in captive animals. Section 38A-H of the Act provides for establishing the Central Zoo Authority ('CZN'). CZN is the nodal body that recognizes, regulates and provides guidelines for other zoos. It lays down guidelines for cage size, vet care facilities, minimum standards for captivity, exchange and loaning of animals, etc. Further, section 38C(e) provides that CZN shall co-ordinate the acquisition, exchange and loaning of animals for breeding purposes. The Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960 ('PCA'), further prohibits the infliction of unnecessary pain or suffering on animals. India is also a party to CITES since 1976, which prohibits the exploitation of animals.

The earliest recorded zoological collections associate with cheetah that are currently extinct in India. Emperor Ashoka in third century B.C. respected the ashrams of saints that always had deer and birds. Menageries were the places meant for the collection of animals in earlier periods. The Mughal emperors decorated their gardens with their private zoos and hired artists to paint many subjects including plants and animals. In colonial period the ruling kings of various princely states of India went for establishing zoos in their own states.

Here we mention few of the Indian zoos established in the nineteenth century.

Thiruvananthapuram Zoo :

Thiruvananthapuram Zoo is one of the large zoos of the country and located in the temple

city of Thiruvananthapuram, Kerala. The Zoo is spread over about 55 acres of land and was founded by Swati Tirunal Rama Varma, the ruler of Travancore. He was the visionary behind the Zoo and the Museum. A committee was formed in 1855 with the Maharaja of Travancore, General Cullen as President, Elaya Raja as Vice President, Mr. Allen Brown as Secretary of the Committee and the Director of the Museum. Finally, in 1857, the Museum was opened to the public. However, the Museum itself would not be able to attract crowds and increase football. Hence, a Zoo and a park started in 1859.

Sakkarbaug Zoological Garden, Junagadh :

Founded in the year 1863 by the Nawab The Mohabat Khanji Babi-II of Junagadh state, Sakkarbaug Zoological Garden is spread across an area of 210 acres. The aim behind establishing this zoo was to save the Asiatic Lion from extinction. Over the years, this zoological garden has not only played a significant role in the conservation of several species but has also become an integral part of the tourism in Junagadh, Gujarat.

Jaipur Zoo or, Nahargarh Zoological Park :

The Jaipur zoological garden was built by Maharaja Sawai Pratap Singh in the year 1868 as an enlargement of the Ram Niwas Garden. The Jaipur Zoo is spread across a total area of 35 acres. The zoological garden has always remained an attraction among children and young ones. The Zoological Garden was opened to the public in 1877. It features among the oldest zoos of India. In 1999, a 'ghariyal' (crocodile) breeding farm was also set up here. Currently, this farm is the biggest ghariyal farm

in the entire country. Jaipur Zoo is also home to a beautiful museum which exhibits the regional wildlife indigenous to Rajasthan.

Udaipur Zoo or, Gulab Bagh Zoo :

Built in the year 1878 during the reign of Maharaja Sajjan Singh, Gulab Bagh is home to exquisite and history of Mewar dynasty. This garden was also known as the Sajjan Niwas Garden. It spans across 66 acres of land. The zoo in this garden stands fourth in the list of the oldest zoos in the sub-continent. The garden has a great significance in Indian medicine.

Baroda Zoo or, Sayaji Baug Zoo :

The Inspiration of a Zoo in Baroda came from H.H. Maharaja Sayajirao Gaekwad III – a Great Visionary Ruler of Baroda. It was way back in 1875 when a tract of land on the bank of river Vishwamitri, on the outskirts of the city was chosen by the Maharaja to develop a vast garden and a zoo. This is the largest public garden in the western part of the country, sprawled over 113 acres. The Maharaja donated his own private collection of Indian and Exotic Animals to the Zoo, and on 8th January 1879, the park was declared open to the public.

Mysuru Zoo or, Sri Chamarajendra Zoological Gardens :

The zoological gardens in Mysore were set up by Maharaja Chamaraja Wodeyar who is acclaimed as one of the architects of modern Mysore. The Zoological Garden was carved out of a portion of the Summer Palace also known as the Pleasure Palace, which was in the eastern part of the city. The zoo was called Palace Zoo and was inaugurated in 1892. In the beginning the zoo was developed on 10 acres of the Summer Palace. The Maharaja hired Mr. G.H. Krumbeigal a German landscaper and horticulturist to set up the zoo.

As the Maharaja was an animal lover he took special care to ensure that all the enclosures for the animals were spacious and aesthetically built. The enclosures are in use till this day. The Maharaja appointed Mr. Huger an Australian as the Zoo Superintendent.

The Thrissur Zoological Park :

The Thrissur Zoo and State Museum was established in 1885. It is located in Chembukkavu, at the heart of Thrissur City, Kerala. Situated in 13.5 acres of land. The zoo and museum collectively offer a rich blend of natural beauty, historical significance, and educational value, making it a prime destination for locals as well as tourists visiting Thrissur. The Thrissur Zoo and State Museum began its journey in 1885, offering a small collection of animals and historical artefacts. Over the years, it has grown significantly, now housing a diverse array of animal and bird species, as well as a wide range of historic pieces like swords, antique jewellery, and rocks. The zoo compound includes a Zoological Garden, Botanical Garden, Art Museum, and Natural History Museum. The Natural History Museum, established in 1964, provides an in-depth look into the natural habitats of various species, with notable contributions from famous ornithologist Dr. Salim Ali.

Kolkata Zoo or, Alipore Zoological Garden

:The history of Alipore Zoo Garden dates back to as early as 1842 when the curator of Bengal Asiatic Society, Dr. John McClelland came up with a plan for the establishment of the zoological garden in Calcutta. However, this did not materialize and was followed by the plan of Dr. Joseph Bart Fayer (the president of Asiatic Society of Bengal) in 1867. This plan drew great public attention but failed due to lack of space. For the same reason the plan of Carl Louise Schwendler, the postmaster to the Govt. of India failed in 1873. At last, in 1875

the then Lt. Govt. of Bengal Sir Richard Temple took the initiative. The land on Alipore Road was chosen, approved and a managing committee of 5 members was set up. The first meeting of the management committee was held on 10th December, 1875 and after deciding the rate of the admission fees, the committee opened the gate for public on 1st May, 1876 with an area over 45 acres of land.

Chennai Zoo or, Arignar Anna Zoological Park :

The history of Chennai Zoo, formerly known as Madras Zoo dates back to the year 1855. The idea of a collection of animals and maintaining them in one place was mooted by Dr. Edward Belford. He was then director of the Government Central Museum at Madras, persuaded the Nawab of the Carnatic to donate his entire animal collection to the museum. Mr. Balfour started the Zoo on the museum premises and a year later it had over 300 animals, including different significant species. Later the Onus of managing the Madras Zoo was transferred to Madras Corporation and got shifted to People's Park near Chennai Central Railway station at Park Town in 1861. The zoological garden occupied one end of the 116 acres park.

Veer Jijamata Udyan, or the Rani Baug in Byculla, Mumbai :

Spread across an impressive ~60 acres, the Veer Jijamata Udyan, or the Rani Baug in Byculla, Mumbai. Established in 1861, the Veer Jijamata Udyan was initially just a botanical garden named Victoria Gardens or Ranichi Baug (Queen's Garden in Marathi). The zoo was added to the gardens around 30 years later in 1890. The entire complex comprising the Byculla Zoo plus the botanical gardens was renamed Veer Mata Jijabai Bhonsale Park as a tribute to the revered mother of Chhatrapati Shivaji Maharaj.

Today, zoos are meant to entertain and educate the public but have a strong emphasis on scientific research and species conservation. There is a trend toward giving animals more space and recreating natural habitats. Zoos are usually regulated and inspected by the government. Some critics and many animal rights activists argue that animals in zoos are treated as sneak shots rather than creatures and often suffer from a free transition from wild to captivity. However, as wildlife imports are being regulated by organisations such as CITES and national law, zoos are beginning to maintain populations through captive breeding. This change began around the 1970s. Since then, many collaborations have emerged in the form of breeding programs for both common and endangered species.



Reflections on Why and How the Best Teachers are the 'Best' ?

Dr. Priyatosh Dutta

Teacher-in-Charge, Associate Professor, Department of Chemistry

["Be True to Yourself and Do Your Best". Not everyone will understand you. Not everyone will appreciate you. Not everyone will embrace you. Do not change for them. Just smile at them, and move along.]

Who are the Best Teachers?

Simply and primarily, who have a sustained influence on their students and can touch the lives of their students. Who can? Those

A) who do not believe in Two Myths :

(i) "Great teachers are Born, not made"

(ii) "Intelligence is fixed rather than expandable with hard work."

B) who can make their students feel like... The teacher offered a window to the world, classes were more of adventures, I can try to understand ideas and can think through problems better now.

C) who can Conceive of Teaching as fostering learning, understanding their students, understanding the nature and processes of learning better.

D) who Ask Themselves

What do I mean by learning? How can I foster it?

How can my students and I best understand and recognize its progress (and setbacks)?

How can I know whether my efforts help or hurt?

E) who recognise

"Good teaching is NOT just a matter of technique". There is always something new to learn – not so much about teaching techniques but about these particular students at this particular time and their particular sets of aspirations, confusions, misconceptions, and ignorance.

F) who are ready to agree

When the class is over, they quickly forget much of what they have "learned". they are often unable to link that knowledge to real-world situations or problem-solving contexts? Because, You rely on "plug and chug" exercises that have little connection with the real world?

G) who believe the following two Hypothesis to be False "Any expert in the field would become an outstanding educator."

The experts just need more time to become better teachers."

H) who realize that Three other kinds of knowledge at play :

1. keen sense of the histories of their disciplines, including the controversies ("think of their own thinking", metacognition).

2. To understand students' mental model and the emotional baggage attached to them.

3. Knowledge to grasp how other people might learn (distinguish between foundational concepts and elaborations, simplify & clarify complex topics, tell the right story).

I) who can differentiate between “Giving space/time (to construct ideas)” vs. “covering material”.

Short-term memorization vs. long term knowledge structure.

Memorising parts vs. “interconnected structure”.

Absorbing information vs. understanding. Transmitting vs. “think, analyse, synthesise”.

J) who know a simple equation for an Answer (A)

write down the largest question (Q) that the course would address.

list the questions (q_i) that one would need to explore to address the larger issue. Q

$$= \sum q_i$$

What information (I), knowledge (K), mathematical tool (M), reasoning (R) ability they need to answer q_i s.

Train to translate, correlate and retrieve ($q_i + I + K + M + R = Q \rightarrow A$)

In summary, the Best Teachers are those who ponder on some interesting Things to Do in their Lectures

- Structuring the process
- Improving students' notes
- Using hand-outs
- Structuring and summarising content
- Linking lectures
- Active learning during lectures

In Conclusion

“the necessary knowledge alone can't account for their teaching success.” Feynman on himself, dares to talk on “when my teaching fails”.

Kind words are quite precious and cost nothing; Praise people. Do it publicly and often.

To remember, everyone needs appreciation, acceptance and more encouragement.

Artificial Intelligence : A Game Changer for College Graduates and Their Employability

Dr. Dipra Bhattacharya
President, Governing Body

Artificial Intelligence (AI) has long been a fascinating concept, confined to science fiction novels and futuristic movies. However, in recent years, AI has become an integral part of our daily lives, influencing industries, economics, and even societal structures. The advent of AI technology is ushering in a new era of transformation, creating opportunities and challenges in nearly every sector. College students pursuing graduation today are poised to experience the most profound effects of this revolution. As AI continues to evolve, it is not only reshaping industries but also offering new career paths that will shape the workforce of tomorrow. While these opportunities are exciting, there are also necessary precautions and preparations that students must consider to navigate this rapidly changing landscape successfully.

The Rise of Artificial Intelligence

AI is no longer a buzzword; it is a reality that is transforming how we work, learn, communicate, and entertain ourselves. Industries such as engineering, healthcare, commerce, finance, retail, transportation, and manufacturing are being reshaped by AI. In healthcare, AI-powered diagnostic tools can analyze medical image with remarkable accuracy, while in finance; algorithms can predict stock market trends and automate trading. In retail, chatbots are enhancing customer service, and self-driving cars are revolutionizing the transportation sector. The growing use of AI is in accelerating productivity, reducing costs, and improving efficiency in all

these fields, which we will try to discuss in this article.

The Good Side of AI : The Opportunities

1. Increased Efficiency

Today, AI can analyze medical images faster and more accurately than a radiologist, which can lead to quicker diagnoses and better patient outcomes. In business, AI can automate repetitive tasks, allowing you to focus on more strategic and creative work.

2. Job Creation in New Fields

Computer science students can build AI models, while a business student might focus on how AI can be integrated into business strategies.

3. Improved Personalization

Streaming platforms like Netflix use AI to recommend movies based on your viewing history, while e-commerce sites like Amazon suggest products based on your previous purchases.

4. Innovation

From predicting climate change patterns to creating AI-driven drugs, learning about AI can position you at the cutting edge of groundbreaking innovations.

The Bad Side of AI : The Challenges

1. Job Displacement

Customer service roles and manual labor jobs are increasingly being replaced by AI-powered chatbots and robots.

2. Bias and Inequality

AI is only as good as the data it is trained on. If the data is biased, the AI will also be

biased. For instance, AI systems used in hiring might favour candidates based on historical data that reflects systemic biases, resulting in discrimination.

3. **Over-reliance on AI**

In the legal field, an AI system might suggest a verdict based on data, but human oversight is crucial to ensure that the decision aligns with ethical and legal standards.

4. **Security Risks**

Imagine a scenario where an AI-powered car is hacked, causing it to behave erratically. With AI becoming so integrated into everything from banking systems to personal assistants, cybersecurity will be critical to protect sensitive data and prevent potential disasters.

Why You Should Learn AI

In today's fast-paced world, staying relevant in the job market is more challenging than ever. Industries are evolving rapidly, and one of the most significant drivers of this change is AI. The question isn't whether AI will impact your career—it already is. The real question is whether you will use AI to your advantage or get left behind as it becomes an integral part of your field.

How College Students Will Benefit from AI

As AI technologies continue to advance, they will have a profound impact on the career prospects of college students. These technologies are not just for computer scientists and engineers; AI is affecting almost every field of study. Graduates from various disciplines can benefit in the following ways :

1. **Improved Learning and Research** : AI tools like research assistants and natural language processing help students gather information and analyze data more efficiently. Adaptive learning platforms personalize education by assessing strengths and weaknesses and delivering tailored content.

2. **New Career Paths** : AI is creating diverse career opportunities beyond tech. Business students can focus on AI-driven decision-making, healthcare students on AI diagnostics, and arts students can explore digital media and creative fields like generative art. AI is merging with fields such as neuroscience and environmental science, leading to interdisciplinary careers like AI ethics officers and machine learning engineers.

3. **Entrepreneurship** : AI empowers students with entrepreneurial aspirations to create start-ups and digital products, even without deep technical knowledge. They can focus on market needs and business strategies, collaborating with experts to develop AI solutions.

Guiding Blocks to Go Forward

1. **Continuous Learning** : AI is evolving rapidly, so students must stay updated through online courses, certifications, and workshops to develop relevant skills.

2. **Ethical Awareness** : Students must understand the ethical implications of AI, including privacy, bias, and accountability, to address these challenges in the workforce.

3. **Soft Skills** : While technical skills are essential, soft skills like communication, collaboration, and problem-solving will remain important in the AI-driven job market.

4. **Cybersecurity Awareness** : As AI systems become more widespread, students must be aware of cybersecurity risks and understand how to protect AI systems, particularly in sensitive fields like finance and healthcare.

Why AI Matters for Students - How it is Reshaping Your Subject Streams Commerce & Accountancy :

The traditional landscape of commerce is changing. Roles in accountancy, finance, and

economics are evolving as businesses increasingly turn to AI to enhance operations. For commerce students, by gaining AI-related skills, students can become more attractive candidates in a competitive job market, providing them with the expertise needed to thrive in roles that involve complex financial analysis, economic forecasting, auditing, and more.

Automated Bookkeeping and Data Entry : Tools like QuickBooks and Xero already use AI to automate much of the bookkeeping process. AI can analyze invoices, receipts, and other financial documents, recognizing patterns and making real-time updates to the company's books. This reduce human error and saves accountants' hours of manual work.

AI in Auditing : AI-driven systems can analyze massive amounts of financial data, identify anomalies, and flag irregularities in real-time. This not only increases the accuracy of audits but also enhances their speed.

Fraud Detection and Prevention : AI can help accountants detect fraudulent activities by analyzing transactions for suspicious patterns. This is particularly valuable for auditors and forensic accountants who specialize in fraud investigations.

Finance

Algorithmic Trading : AI-driven systems analyze historical market data to identify trends and predict future price movements. These systems can execute trades in real-time, optimizing portfolio management and reducing human bias.

Risk Management : AI models can predict potential risks such as economic downturns, shifts in market sentiment, or changes in interest rates. This gives financial analysts and investment managers the tools to make more informed decisions.

Fraud Prevention and Credit Scoring : Financial institutions use AI to detect fraud by monitoring transactions for irregularities and unusual spending behavior. AI-driven credit scoring models also analyze borrowers' financial histories and predict their likelihood of repaying loans, providing a more accurate and efficient alternative to traditional credit scoring methods.

Economics

Economic Forecasting : AI can help economists predict economic trends more accurately by analyzing historical data, market behavior, and external factors such as political events.

Policy Optimization : By simulating different scenarios, AI can model the impact of policy changes on various economic factors, such as tax rates, government spending, or trade policies.

Labor Market Analysis : AI can also be used to analyze labor market trends, helping economists and businesses understand the impact of automation on employment, the demand for certain skill sets, and the shifting dynamics of industries.

Pure Science (Physics, Chemistry, Mathematics) :

AI is advancing all these fields by enabling faster analysis, deeper insights, and innovative discoveries.

Automated Data Analysis : AI analyzes complex datasets quickly and accurately, aiding in fields like physics, chemistry and mathematics.

Simulation & Modeling : AI improves simulations, such as modeling quantum mechanics or predicting molecular behavior in chemistry.

Accelerating Discoveries : AI speeds up scientific discoveries by processing large

datasets, helping identify new materials or predict chemical reactions.

Bio-Science :

Personalized Medicine : AI tailors medical treatments to individuals based on genetic data and medical history.

Drug Discovery : AI accelerates the identification of promising drug compounds, optimizing the development of new treatments.

Genomic Research : AI decodes genetic data, aiding in the identification of disease markers and improving gene therapies.

Biological Modeling : AI simulates complex biological systems, enhancing understanding of diseases and therapeutic targets.

Humanities :

Natural Language Processing (NLP) : AI analyzes text to detect patterns, sentiment and generate new content, aiding literary and linguistic research.

Historical Data Analysis : AI processes historical records to uncover new insights and discoveries.

Social Sciences : AI analyzes social trends, behaviors, and public opinion, providing insights for research and policy.

Ethics & Philosophy : AI helps explore new ethical frameworks and societal impacts of technology, especially in areas like AI ethics and future work.

How Can Students Get Started with AI?

1. Take introductory AI courses
2. Take Data Science courses related to your course stream
3. Learn AI Tools for your field
4. Try to work / intern on AI-Driven projects
5. Stay updated on AI trends especially on AI Ethics

Conclusion : Be Proactive, Not Reactive

AI is here to stay, and its influence will only continue to grow. As a college student, it's in your best interest to learn about AI now to stay ahead of market trends before AI takes over you. Embrace the opportunities AI brings, but also be mindful of the challenges it presents. By learning AI, understanding its ethical implications, and staying adaptable, you'll be well-equipped to succeed in the AI-powered world of tomorrow. After all, the future of work is not about competing with machines—it's about collaborating with them to unlock new potential.

